हंसवंशावतंस – श्रीमन्महामहिम - विद्यामार्तण्ड
निग्रहाचार्य - श्रीभागवतानंदगुरुकृतम् सृष्टिभाष्यम्

शक्तिसूत्रम्

श्रीनिग्रहाचार्यकृत सृष्टिभाष्य एवं
हेमलता भाषानुवाद के साथ

लेखक
श्रीभागवतानंद गुरु

आर्यावर्त सनातन वाहिनी 'धर्मराज' के सौजन्य से प्रकाशित

Notion Press

NOTION PRESS
India. Singapore. Malaysia.

ISBN xxx-x-xxxxx-xx-x

First Published – 2021
Second Edition - 2022

This book has been published with all reasonable efforts taken to make the material error-free after the consent of the author. No part of this book shall be used, reproduced in any manner whatsoever without written permission from the author, except in the case of brief quotations embodied in critical articles and reviews. The Author of this book is solely responsible and liable for its content including but not limited to the views, representations, descriptions, statements, information, opinions and references ["Content"]. The Content of this book shall not constitute or be construed or deemed to reflect the opinion or expression of the Publisher or Editor. Neither the Publisher nor Editor endorse or approve the Content of this book or guarantee the reliability, accuracy or completeness of the Content published herein and do not make any representations or warranties of any kind, express or implied, including but not limited to the implied warranties of merchantability, fitness for a particular purpose. The Publisher and Editor shall not be liable whatsoever for any errors, omissions, whether such errors or omissions result from negligence, accident, or any other cause or claims for loss or damages of any kind, including without limitation, indirect or consequential loss or damage arising out of use, inability to use, or about the reliability, accuracy or sufficiency of the information contained in this book.

All Rights Reserved - Author

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु

हंसवंशावतंस – श्रीमन्महामहिम - विद्यामार्तण्ड
निग्रहाचार्य - श्रीभागवतानंदगुरुकृतम् सृष्टिभाष्यम्

शक्तिसूत्रम्

श्रीनिग्रहाचार्यकृत सृष्टिभाष्य एवं
हेमलता भाषानुवाद के साथ

लेखक
श्रीभागवतानंद गुरु

आर्यावर्त सनातन वाहिनी 'धर्मराज' के सौजन्य से प्रकाशित

Notion Press

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु

धर्मसंरक्षणार्थायाधर्मसंहारहेतवे ।
निग्रहाणाञ्च धर्माज्ञा लोके लोके प्रवर्द्धताम् ॥

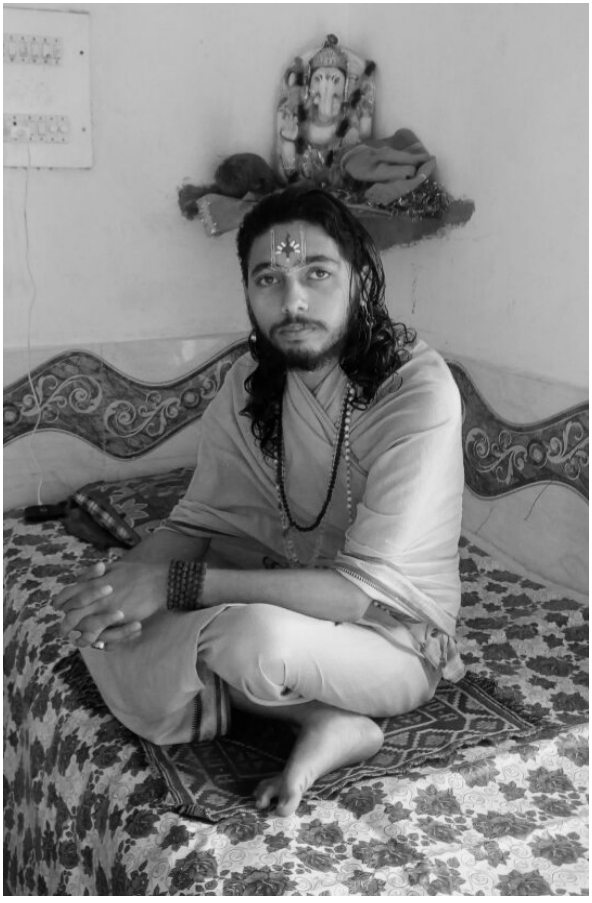

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु

पुरोवाक्

भारतीय दर्शनों के आर्ष सूत्रवाङ्मय में त्रिविध जिज्ञासायें दृष्टिगोचर होती हैं -

१. 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' (वेदान्तसूत्र): बादरायण व्यास।

२. 'अथातो धर्मजिज्ञासा' (मीमांसासूत्र): ऋषि जैमिनि।

३. 'अथातः शक्तिजिज्ञासा' (शक्तिसूत्र): हयग्रीव एवं अगस्त्य।

उपर्युक्त तीनों सूत्रों की मानसपटल पर उपस्थिति होने के साथ ही यह स्पष्ट होता है कि जहां एक ओर बादरायण व्यास की जिज्ञासा का केन्द्र 'ब्रह्म' है तो दूसरी ओर ऋषि जैमिनि की जिज्ञासा का केन्द्र ब्रह्म न होकर 'धर्म' है। एक के ध्यान एवं उपासना का विषय निर्गुण, निराकार, निरञ्जन परात्पर सत्ता है तो दूसरे के ध्यान एवं उपासना का विषय वेद एवं यज्ञ।

बादरायण व्यास का 'वेदान्तदर्शन' यद्यपि निर्गुण परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करके उसके स्वरूप की मीमांसा करता है, किन्तु जैमिनि का 'मीमांसादर्शन' परमात्मा की सत्ता को अस्वीकार करते हुए स्वर्ग के साधनभूत वेद, धर्म, यज्ञ एवं यज्ञीय कर्म आदि की मीमांसा में रत है।

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु

एक की दृष्टि में विश्व के सृजन, पालन एवं संहार के लिये किसी परात्पर परमात्मसत्ता में विश्वास करना सर्वथा आवश्यक है, जबकि दूसरे को इन सृष्ट्यादिक व्यापारों के निष्पादन के लिये किसी भी परात्पर परमात्मसत्ता के अस्तित्व की आवश्यकता ही नहीं थी। इन दोनों ही दर्शनों की जिज्ञासाओं में किसी परात्पर, निरपेक्ष, सार्वभौम, नित्य एवं सर्वादिकारणभूता परा शक्ति के चिन्तन की कथमपि आवश्यकता नहीं थी।

फलस्वरूप तान्त्रिकों ने वही कार्य किया, जिसे ब्रह्मजिज्ञासुओं एवं धर्मजिज्ञासुओं ने नहीं किया, अतएव उन तान्त्रिकों की जिज्ञासा का विषय परात्परा स्वातन्त्र्य शक्ति-समन्विता, अद्वितीया, सर्वादिकारणभूता, अजा, एका, ब्रह्मस्वरूपा एवं अवाङ्मनसगोचरा, अद्वैत महाशक्ति का अनुसन्धान बना, जिसके परिणामस्वरूप उनकी जिज्ञासा ने 'अथातः शक्तिजिज्ञासा' के रूप में आकार ग्रहण किया।

शाक्तदर्शन एवं शाक्तोपासना का आर्ष सूत्र है— 'अथातः शक्तिजिज्ञासा। ऋग्वेद की प्रथम ऋक् 'अनिमीळे पुरोहितम्' से लेकर अथर्ववेद तक, संहिता से लेकर उपनिषत् तक, स्मृतियों से लेकर पुराणों तक, साङ्ख्य दर्शन से लेकर न्याय-वैशेषिक तक के समस्त दार्शनिक चिन्तनों में विश्व की आधारभूता परा सत्ता

का विमर्शन पुरुषाकाररूप में ही किया गया है। कहीं उस सर्वानुस्यूत, सर्वाधार, सर्वव्याप्त, सर्वस्वरूप, सर्वाकार, सर्वात्मक एवं सर्वातीत परा सत्ता को 'ब्रह्म' कहा गया तो कहीं परमेश्वर । कह उसे 'परमात्मा' कहा गया तो कहीं 'भगवान्'। कहीं 'परमशिव' कहा गया तो कहीं 'महाविष्णु'। प्रत्येक पुरुषाकार परा सत्ता के साथ उसकी शक्ति की भी कल्पना की गयी और वही कल्पित शक्ति कहीं समवायिनी अभिन्न शक्ति के रूप में तो कहीं अचिन्त्य मायाशक्ति के रूप में, कहीं सत् रूप में तो कहीं असत् रूप में कल्पित की गयी किन्तु किसी ने भी उसे निरपेक्ष परात्पर परा सत्ता के रूप में कल्पित नहीं किया।

वेदान्तसूत्रों की व्याख्या भी शक्तिवाद को मूल सिद्धान्त मान कर नहीं की गई। यद्यपि वेदों में 'सरस्वती, उषा, अदिति, वाणी, रात्रि, गायत्री, सावित्री आदि देवियों की परा शक्ति के रूप में स्तुति दृष्टिगोचर होती है, किन्तु दार्शनिक प्रस्थानों में 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' की भाँति 'अथातः शक्तिजिज्ञासा' के रूप में प्रथक दार्शनिक चिन्तन के रूप में उसे कोई स्थान नहीं मिला।

श्रीदेव्यथर्वशीर्ष में समस्त देवताओं द्वारा देवी से अपना परिचय देने के अनुरोध का उल्लेख है। समस्त देवता पूछते हैं- हे महादेवि ! तुम कौन हो ? : काऽसि त्वं महादेवीति।

देवी कहती हैं- 'अहं ब्रह्मस्वरूपिणी, मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्, शून्यञ्चाशून्यश्च, अहमानन्दानानन्दौ, अहं विज्ञानाविज्ञाने, अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये। अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि, अहमखिलं जगत्, वेदोऽहमवेदोऽहम्, विद्याहमविद्याहम्, अजाहमनजाहम्, अधश्चोर्ध्वश्च तिर्यक्चाहम् आदि।

इन्हीं के विषय में देवताओं ने भी कहा - 'एषाऽऽत्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या ..... सैषाष्टौ वसवः । सैषैकादश रुद्राः । सैषा द्वादशादित्याः । सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्रस्वरूपिणी। सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः । सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि .... विश्वरूपिणी, अज्ञेया, अनन्ता, अलक्ष्या, अजा, एका, मन्त्राणां मातृका, शब्दानां ज्ञानरूपिणी, ज्ञानानां चिन्मयातीता, शून्यानां शून्यसाक्षिणी।'

इस प्रकार शक्ति को परात्पर परब्रह्म के रूप में स्थान तो मिल गया, किन्तु शक्तिवाद को सुदृढ़ स्थापना तो सीतोपनिषत्, त्रिपुरातापिन्युपनिषत्, सरस्वतीरहस्योपनिषत्, त्रिपुरोपनिषत्, देव्युपनिषत्, बह्वृचोपनिषत्, सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषत्, भावनोपनिषत् आदि, अगस्त्य के शक्तिसूत्र, हयग्रीव के

शाक्तदर्शनम्, दत्तात्रेय की दत्तसंहिता, परशुराम के परशुरामकल्पसूत्र, त्रिपुरारहस्य, दुर्वासा के ललितास्तवरत्न, पराशम्भुस्तोत्र, त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र, सौभाग्यभास्कर, कालिकापुराण, देवीभागवतपुराण, ललितासहस्रनाम, सप्तशती, गौडपाद की सुभगोदयस्तुति, शङ्कराचार्य की सौन्दर्यलहरी, पुण्यानन्द के कामकलाविलास, अमृतानन्द एवं भास्कर के पन्थ (दीपिका, सेतुबन्ध, वरिवस्यारहस्यम् आदि), अगस्त्य के शक्तिमहिम्नस्तोत्र एवं क्षेमराज के शक्तिसूत्र आदि ग्रन्थों के द्वारा ही हो पायी।

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' की भांति 'अथातः शक्तिजिज्ञासा' प्रथम सूत्र के रूप में पहली बार हयग्रीव के ‘शाक्तदर्शनम्’ एवं अगस्त्य के ‘शक्तिसूत्र' में ही अवस्थान प्राप्त कर सका। यहाँ वही शक्ति जिज्ञास्य है, जो मन्त्रों में 'मातृका' शब्दों में 'ज्ञान', ज्ञानों में चिन्मयातीता' एवं शून्य में ‘शून्यसाक्षिणी' है। देव्युपनिषत् में कहा भी गया है -

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी॥

यहाँ वही जिज्ञास्य है, जो कामकला, श्रृंगारकला, पराशक्ति, शाम्भवी विद्या, कादि विद्या, हादि विद्या, सादि विद्या तथा

प्रत्यक्चितिस्वरूपा महात्रिपुरसुन्दरी है, जो षोडशी, श्रीविद्या, पञ्चदशाक्षरी, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी कहलाती है जो इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति एवं कुण्डलिनी तथा महात्रिपुरसुन्दरी है जो कामेश्वरी, सदानन्दघना, पूर्ण एवं स्वात्मैक्यरूपा देवता है।

यहाँ वही शक्ति जिज्ञास्य है, जिसकी उपासना में 'इच्छाज्ञानक्रियात्मकब्रह्मग्रन्थिमत्' रसतन्तु ब्रह्मनाड़ी ब्रह्मसूत्र है, 'चिदग्निस्वरूपपरमानन्द शक्तिस्फुरण' ही वस्त्र है, 'चिच्चन्द्रमयी सर्वाङ्गश्रवण' ही स्नान है, 'रक्तशुक्लपदैकीकरण' ही पाद्य है, 'स्वच्छस्वपरिपूर्णानुस्मरण' ही गन्ध है, 'सच्चिदुल्काऽकाशदेहो' दीप है और 'मूलाधारादाब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं ब्रह्मरन्ध्रादामूलाधारपर्यन्तं गतागतरूप' प्रादक्षिण्य है।

यह साधना का वह उच्चतम स्तर जहाँ निरोध, उत्पत्ति, बन्धन, साधना, मुक्ति, बद्ध, साधक, मुमुक्षु एवं मुक्त की अवधारणा भी मिथ्या हो जाती है—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

जहाँ ज्ञानविज्ञान-तत्पर योगी धान्यार्थी की भाँति समस्त बाह्याडम्बरों का 'पलाल' की भाँति त्याग कर देता है -

पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद्ग्रन्थमशेषतः। जहाँ मन्त्र-जप-जपाङ्ग, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, द्रष्टा-दृश्य-दर्शन, ध्याता-ध्यान-ध्येय, उपासक - उपासना-उपास्य, साधक-साधना-साध्य, देवता-ऋषि-छन्द, वर्ण- नाद- शून्य, अवस्था, मन्त्रार्थ, जगत्, ग्रह, नक्षत्र, चक्र, राशि, शक्तिचक्र, गुरु एवं भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के मध्य स्थित सारे द्वैत ध्वस्त होकर पूर्ण सामरस्य की अनुभूति होती है।

जहाँ शिव और शक्ति, भक्त और भगवान्, कुल एवं अकुल, षट्चक्र एवं श्रीचक्र, श्रीचक्र एवं शरीर, शिवचक्र एवं शक्तिचक्र, मूलाधार एवं सहस्रार, कुण्डलिनी एवं महाकुण्डलिनी आदि सभी अपनी-अपनी भेदात्मकता का त्याग करके अद्वैतभावापन्न होकर एक हो जाते हैं। जहाँ समय, सार्वभौम, सर्वव्यापक एवं नित्य सामरस्य ही पूर्ण उपलब्धि होती है।

जहाँ कर्म, ज्ञान, भक्ति, उपासना एवं योग अपने-अपने भेद-भाव का त्याग करके गंगा-यमुना सङ्गम में रूपान्तरित होकर एक हो जाते हैं। यह 'शिवशक्तिसमरसात्मक' महाभाव किंवा ब्राह्मभाव, ब्रह्माद्वैत एवं पञ्चकृत्यकारी परमशिव की विमर्शस्वरूपा आत्मशक्ति की साधना की संदेशवाहिका है। यहाँ पहुँचकर ज्ञान एवं योग एक हो जाते है तथा यहाँ ज्ञान एवं योग का प्राधान्य होते हुये भी 'भक्ति' की मन्दाकिनी ही सर्वाधिक

पूज्या है। आचार्य उत्पलदेव कहते हैं-

न योगो न तपो नार्चाक्रमः कोऽपि प्रणीयते।
अमाये शिवमार्गेऽस्मिन् भक्तिरेका प्रशस्यते॥

यहाँ पहुँचकर ज्ञानमार्गी केवलाद्वैतवेदान्ती आचार्य शङ्कर भी अपनी ब्रह्मरूपता की अस्मिता भूलकर कह उठते हैं -

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥

'शक्तिसूत्रम्' के अनुसार मुक्ति का स्वरूप

आचार्य अगस्त्य की दृष्टि - आचार्य अगस्त्य ने दुःखध्वंस को परम पुरुषार्थ मानते हुये सर्वदुःखोपरम को मोक्ष स्वीकार किया है। समस्त दुःखों का उपशम ही परम श्रेयस्कर 'मोक्ष' है। आचार्य अगस्त्य कहते हैं —
'सर्वदुःखोपरमः श्रेयान् मोक्षः ।' (२.५३)
प्रत्यगात्मावस्थान ही मुक्ति है— आचार्य अगस्त्य कहते हैं कि पहले प्रकृति को और फिर अपने को आत्मस्वरूप में लय करके जब द्वैतभाव से अद्वैतभाव में अवस्थान होता है तब अकेला एक तत्त्व ही शेष रह जाता है और वहाँ दो के लिए कोई स्थान शेष

नहीं रह जाता; इसी अद्वैतावस्थान में साधक प्रत्यगात्मस्वरूप स्थिति में प्रत्यगात्मा शुद्ध, पूर्ण एवं मुक्त होकर अवस्थान करता है। वह शुद्ध, पूर्ण, प्रत्यगात्मा एवं मुक्त हो जाता है-
१. 'प्रथमं प्रकृतिं मनसा विभाव्य तामपि स्वात्मनि स्वात्मानं तस्यां मिथो विलाप्य तत एकोऽवशिष्यते।' (३.५३)
२. 'मुक्तः शुद्धः पूर्णः प्रत्यगात्मैव भवति।' (३.५४)

यह प्रत्यगात्मावस्थान ही मुक्ति है। 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्' कहकर योगसूत्रकार पतञ्जलि ने भी आत्मावस्थान को ही मुक्ति माना था।

ब्राह्मीभाव ही मुक्ति है — आचार्य अगस्त्य कहते हैं कि संसार-सागर से मुक्ति पाने वाले मुक्त पुरुष का लक्षण यह है कि वह मुक्त एवं ब्रह्म हो जाता है -
१. यत्प्रसादाज्जीवन्मुक्तो जीवः परं ब्रह्मैव भवति । (२.३८)
२. नित्यमुक्तः पूर्णो भवति । (२.४२)
३. स वै ब्रह्मभूयाय कल्पते ब्रह्मभूयाय कल्पत इति । (२.१२६)
यह मुक्ति ही 'जीवन्मुक्ति' है। (शक्ति सूत्रः २.३४, २.३८)
आत्मज्ञान ही मुक्ति है— आचार्य अगस्त्य कहते हैं कि जो आत्मवित् हो जाता है, वह मुक्त होकर संसार सागर से तर जाता है— 'विदित्वैवं तरति, य आत्मवित् ।' (शक्तिसूत्र- २.१-२)

अविद्या के क्षय से प्रकृति शक्ति में लीन हो जाती है; अतः शक्ति एवं साधक दोनों ब्रह्म ही कहलाने लगते हैं —
'अविद्याक्षयेण ब्रह्माभिधेयम् ।' (२.७)
इस मुक्ति के सहायक तत्त्वों में धर्म की भी भूमिका है—
'अधर्मान्बन्धः ।' (१. ११८) 'धर्मो निवृत्तौ' (२.११९)।
अर्थात् अधर्म से बन्धन होता है और धर्म से बन्धनमुक्ति होती है। 'विदित्वैवं तरति' (२. १) के द्वारा आचार्य अगस्त्य ज्ञान को मुक्ति का प्रधान साधन स्वीकार करते हैं।
'धर्मान्मोक्षोऽधर्मान्बन्धः' (३.३) कहकर वे धार्मिक कार्यों की महनीयता को भी स्वीकार करते हैं; जबकि अन्य दार्शनिक पुण्यापुण्य, धर्माधर्म सभी के त्याग को मुक्ति का मार्ग मानते हैं। बन्धन एवं मोक्ष का कारण प्रकृति भी है। 'प्रकृतिर्द्विधा' (३.१) 'सा बन्धमोक्षयोर्हेतुः ।' (३.२)

सर्वशास्त्राध्ययनके अनन्तर शिवशक्तिसामरस्यरूप किंवा ज्ञानक्रियासामरस्यात्मक आनन्दरूपता की उपलब्धि हेतु शक्ति की जिज्ञासा होती है। अतएव कर्म, मीमांसा, वेदान्त आदि समस्त शास्त्र, मात्र परमानन्द ही जिसकी आख्या है; उस शक्ति की उपलब्धि अथवा बोध हेतु शक्ति की जिज्ञासा की जाती है। यह शक्ति शास्त्राध्ययन के प्रतिफलरूप उत्पन्न परोक्षबौद्धिकज्ञान द्वारा गम्य नहीं है, वरन् अपरोक्ष अनुभूति का विषय है।

यह शक्ति ही स्व-अधिष्ठान परमशिव में जीवत्व और ईश्वरत्व आदि भेदों का सृजन करती हुई विश्वप्रपञ्च की कर्त्री है और धारयित्री भी है। जहां शिव ज्ञान स्वरूप है, वहीं यह शक्ति ज्ञाता स्वरूप है। यही प्रकाशरूपी शिव का विमर्शभाव है। यह अजन्मा शक्ति सर्वकारणकारणरूपा है क्योंकि इसी के द्वारा निर्विकल्प शिव में विश्वप्रपञ्च की भेद कल्पना हुई है। चूंकि शिव सद्रूप है अतः उसकी विमर्शरूप शक्ति द्वारा उसमें उत्पन्न भेद प्रथा भी सद्रूप ही है। यह मनोगम्य है अर्थात् मन में प्रकाशित शुद्ध संवित्ति के द्वारा अनुभव का विषय होती है। किंवा यह सर्वसङ्कल्प विकल्पकारक मन का भी कारण है।

यह परमशिव की सदाशिव अवस्थारूप समष्टि मन है जिसमें यह समस्त विश्व मयूराण्डरसन्यायवत् गर्भीभूत रहता है। यह शिव अथवा आत्मा के साथ सदा ही नित्य अभिन्न है क्योंकि शक्ति को सद्रूप शिव की सदा सन्निधि प्राप्त है। शक्ति द्वारा शिवरूप अधिष्ठान अथवा सत्ता में भेद कल्पना वास्तविक नहीं होकर मात्र आभासी है। यह शक्ति शिवधर्मिणी है। इसी शक्ति द्वारा तत् अर्थात् शिव प्रतिभासित होता है। यही शक्ति बन्धन का भी हेतु है- संसारबन्धहेतुश्च। शक्ति द्वारा निष्कल शिव में जीवत्व ईश्वरत्व रूप अध्यास का आरोपण होता है।

'सर्गादौ सृष्टिरूपा', 'सिसृक्षाशक्तियुक्तोऽसौ सृज्यशक्तिप्रचोदितः' एवं 'सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि' की उक्ति को सार्थक करते हुए निग्रहकारिणी शक्ति के कृपामृताप्लुत सारस्वतसिद्धिलब्ध श्रीमन्निग्रहाचार्य के द्वारा समासशैली में कृत यह महर्षि अगस्त्यप्रोक्त शक्तिसूत्र का सृष्टिभाष्य सारभूत रूप से शक्तितत्त्व का निर्वचन करता है। शक्त्यनुरागी पाठकों एवं साधकों के ज्ञानानन्द की अभिवृद्धि करने में यह समर्थ है, ऐसा इसके अध्ययन से बोध होता है।

लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु,

विद्यावारिधि पं० दीनदयालमणि त्रिपाठी

आदिशङ्कर वैदिक विद्या संस्थान

--*

महर्षि अगस्त्य के द्वारा कहे गये शक्तिसूत्र नामक ग्रन्थ में 305 सूत्र हैं। शक्तितत्त्व को निग्रहकर्म में प्रधान माना जाता है तथा शक्ति को निग्रहकारिणी कहते हैं। निग्रह का अर्थ नियन्त्रण करना होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ निग्रहागमों के द्वारा समर्थित सर्वेश्वरी विद्या आदि से युक्त तथा शक्तिसूत्रों पर निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरुजी के द्वारा लिखे गये सृष्टि-भाष्य एवं हेमलता - हिन्दी अनुवाद के साथ है।

--*

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु

॥ॐ नम उमङ्गेश्वर्यै॥

अभिजिदुवाच

कैषा गुह्या महाविद्या यदुक्ता भवताधुना।
सर्वेश्वरीति या प्रोक्ता सर्वकामार्थसिद्धिदा॥
भवताराधिता शैले यया त्रैलोक्यपोषिणी।
तां विद्यां ब्रूहि विप्रेन्द्र कृपास्ति यदि ते मयि॥

अभिजित् ने कहा - आपके द्वारा अभी जो गुप्त महाविद्या कही गयी है, वह कैसी है जो सभी कामनाओं एवं सिद्धियों को देने वाली है, जिसे सर्वेश्वरी कहते हैं एवं जिसके द्वारा तीनों लोकों का पोषण करने वाली देवी पर्वत में आपके द्वारा आराधिता हुईं, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! यदि आपकी मुझपर कृपा है तो उस विद्या को कहें।

निग्रह उवाच

मार्तण्डादिगणेशकालसहिता सम्पूजिता शम्भुना।
सा देवी महिषान्धकान्तककरी सर्वेश्वरी पातु नः॥
अथाहं सम्प्रवक्ष्यामि विद्यां सर्वेश्वरीं शुभाम्।
अभक्तेभ्यो न दातव्या रक्षणीया प्रयत्नतः॥
निग्रहेण मया प्रोक्ता निग्रहागमसम्मता।
श्रीकालिकोपासकाय पुरा देवलशर्मणे॥

निग्रहाचार्य ने कहा - जो सूर्य, गणेश, काल आदि के साथ शिवजी के द्वारा पूजित हुई हैं, वह महिषासुर एवं अन्धकासुर का नाश करने वाली सर्वेश्वरी देवी हमारी रक्षा करें। अब मैं शुभा सर्वेश्वरी विद्या को कहता हूँ, जिसे भक्तिहीन व्यक्ति को नहीं देना चाहिए एवं प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। निग्रहागमों से समर्थित यह विद्या पूर्वकाल में मुझ निग्रहाचार्य के द्वारा श्रीकालिकादेवी के उपासक देवलशर्मा के प्रति कही गयी थी।

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीसर्वेश्वरीविद्यास्तोत्रमन्त्रस्य
निग्रहऋषिरनुष्टुप्छन्दः, सदाशिवः फलसाक्षी, श्रीपरमेश्वरी
देवता, ऐं बीजं, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकं, महाविद्यास्वरूपं,
नवदुर्गाध्यानं सर्वोचिताभीष्टसिद्धिहेतवे
पुरुषार्थचतुष्टयसिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः।

..ध्यानम्..

दुर्गा चाष्टभुजी त्रिलोकजननी रक्ताम्बरालङ्कृता
तस्मिञ्छैलगुहान्तरे बुधजनै ह्याराधिता सर्वदा।
चित्ताह्लादकरी सदासुखकरी साम्राज्यसन्दायिनी
अर्धाङ्गी गिरिराजराजतनया रक्षन्तु भक्तान् सदा॥

अथ सर्वेश्वरीविद्यास्तोत्रम्

ॐ नमश्चण्डिकायै

कालिका कालरूपा च यमदण्डविदारिणी।
दक्षिणेशी त्रिनेत्रा च दिगम्बर्यै नमोऽस्तु ते ॥१॥
शङ्करार्द्धासनगता जागृतव्योमचारिणी।
शूलखट्वाङ्गधारिण्यै कालिकायै नमोऽस्तु ते ॥२॥
दिग्वस्त्रा कृष्णवर्णा च ज्वलदग्निसमप्रभा।
दैत्यहन्त्री शवारूढा मोक्षदायै नमोऽस्तु ते ॥३॥
श्मशानस्थाननिलया मुक्तकेशी स्मिताननना।
रोगापहारिणी देवि रक्तभोज्यै नमोऽस्तु ते ॥४॥
तनोति जगतः सारं पापौघान् परिशाम्यति।
सा तारा भीमरूपा च सर्वाभीष्टप्रदा भवेत् ॥५॥
तारा त्रैलोक्यजननी नागमाला समाश्रिता।
अद्भुता ज्ञानदात्री च सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ॥६॥
पाटलाब्जैरर्चिता सा नीला भीमा सरस्वती।
विवस्त्रा दैत्यसंहन्त्री धनदा निर्गुणामला ॥७॥
शिवा शिवप्रिया चैव शम्भुधात्री महोज्ज्वला।
त्रैलोक्यपालिनी देवी सा तारा परिपातु मे ॥८॥
षोडशी सौम्यवदना ब्रह्मविष्णुशिवानुता।
हाटकैर्भूषणैर्दिव्यैः सर्वालङ्कारभूषिता ॥९॥

विशालनेत्रा सुकुचा दाडिमोपमदन्तुरा।
षोडशाङ्गी कोमलाङ्गी मन्दहासा सदा शुभा ॥१०॥
कटिप्रदेशसूक्ष्माङ्गी वृत्तपीनपयोधरा।
पद्महस्ता च कन्याभिः षोडशाभिः सदावृता ॥११॥
सर्वसम्पत्करी देवी षोडशी सुरसुन्दरी।
आनन्दवर्द्धिनी भामा विश्वयोने नमोऽस्तु ते ॥१२॥
त्रिदेवजननी वन्द्या रक्तचन्दनचर्चिता।
केयूराङ्गदभूषाङ्गी मीनाक्षी कोकिलस्वरा ॥१३॥
भुवनेशी जगन्माता त्रिदशैः सर्वदार्चिता।
ईश्वरी भोगदा रम्या शिवपर्यङ्कशायिनी ॥१४॥
जपाकुसुमसम्पूज्या पद्मासनसमाश्रिता।
चन्द्रसूर्याग्निनेत्रा च वरदा मोक्षदायिनी ॥१५॥
रक्तवस्त्रा महाविद्या महादेवी तु शाङ्करी।
प्रयच्छतु ममाभीष्टान् सर्वदा भुवनेश्वरी॥१६॥
रक्तपा सा करालास्या विरूपा विकटानना।
भैरवी चण्डिका देवी चण्डमुण्डविनाशिनी ॥१७॥
योगिनीवृन्दघोरैश्च सदापूज्या जयप्रदा।
मुण्डमालावृताङ्गी सा प्रसन्ना भैरवी भवेत् ॥१८॥
चितावह्निसमारूढा पापौघदुर्विदारिणी।
कौशिकी वसुधा तीव्रा भैरवी चापराजिता ॥१९॥

सुरासुराराधिता च निजभक्तार्तिनाशिनी।
भैरवी पञ्चमी विद्या सर्वतः परिपातु माम् ॥२०॥
छिन्नमस्ताद्भुता घोरा सुमेधर्षिसुपूजिता।
स्वरक्तपा विशालाक्षी वस्त्रहीना महाभुजा ॥२१॥
त्यागवात्सल्यसम्पूर्णा शत्रुनाशार्थतत्परा।
मनोजवप्रियारूढा कृष्णा भीमा जयामरा ॥२२॥
वेतालगणसाम्राज्ञी प्रज्ञावर्धनकारिणी।
खड्वाङ्गमुण्डधारिण्यै विशीर्षायै नमो नमः ॥२३॥
कुण्डली कुण्डलेशानी जयादियोगिनीवृता।
छिन्नशीर्षा सदा पातु महाभोगप्रदायिनी ॥२४॥
वृद्धा धूम्रा शूर्पहस्ता प्रचण्डभीमविक्रमा।
विरूपा कुटिला तीक्ष्णा श्वेतकेशी भयङ्करी ॥२५॥
यस्या जपेन होमेन स्मरणेनैव चेदपि।
नश्यन्ति शत्रवः सर्वे तथा दुरितनाशनम् ॥२६॥
गर्दभासनसंरूढा दरिद्रा भोगनाशिनी।
ज्येष्ठालक्ष्मीस्तथा धूमावती आपन्निवारिणी ॥२७॥
विश्वरूपां रिपुध्वंसकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वभूतनियन्त्रीं तां धूमादेवीं नमाम्यहम् ॥२८॥
विष्णोः संहारिकाशक्तिर्बगलेति प्रचक्षते।
शत्रुनाशाय वन्दे तामच्युतां बगलामुखीम् ॥२९॥

पीताम्बरा पीतवर्णा पीतपुष्पोपशोभिता।
स्तम्भिनी द्राविणी चैव बगले त्वां नतोऽस्म्यहम् ॥३०॥
प्रेतासनोपसंविष्टा हरिद्राकेतकीप्रिया ।
सुधासमुद्रद्वीपस्था तत्र सन्त्रासयन् रिपून् ॥३१॥
षड्कर्मसिद्धिदां देवीं कोमलां भीमविक्रमाम्।
स्वर्णवर्णां स्वयंतेजां तां नमाम्यहमादरात् ॥३२॥
मातङ्गी नवमी विद्या मतङ्गमुनिपूजिता।
गजारूढा मत्तचित्ता मधुपा चित्तमोहिनी ॥३३॥
मधूकपुष्पसम्पूज्या योगदा भोगदा जया।
काकपक्षकिरीटाङ्गी रक्ताभरणलङ्कृता ॥३४॥
बुद्ध्यहङ्कारचित्तादीन्मोहयित्वा हसन्मुखी।
सा निजेच्छानुसारेण भ्रामयत्येव मायया ॥३५॥
मनुराज्यप्रदा मन्दहासा मन्देहनाशिनी।
मातङ्गी विश्वजननी प्रसन्ना स्यान्ममोपरि ॥३६॥
भार्गवी सिन्धुसम्भूता कमलासनसंस्थिता।
शक्रादिभिः पूजिता च श्रीदेवी विष्णुवल्लभा ॥३७॥
उलूकासनसंरूढा यातुलैश्वर्यदायिनी।
केशवार्द्धासनगता रक्तवस्त्रा शुचिस्मिता ॥३८॥
दशमी कमला विद्या सर्वार्थपरिपालिनी।
सिन्धुजा अरुणा भद्रा पद्मपुष्पविलासिनी ॥३९॥

चन्द्रप्रभा कर्दमाम्बा स्वर्णवृष्टिकरी सदा।
श्रीविद्या परमेशानी दारिद्र्यात्त्राहि वेगतः ॥४०॥
दाक्षायणीदेहसमाश्रितास्तथा
दशाकृती रूपगुणैर्विभाजिता:।
ता: सर्वविद्या: प्रणमाम्यहं सदा
यच्छन्तु मह्यं हृदि पूर्ववाञ्छितम् ॥४१॥
नगेन्द्रजा पार्वती च अपर्णा शिवरागिणी।
गणेशजननी देवि शैलपुत्री सदावतु ॥४२॥
शिवा शिवप्रिया चैकवीरा योगीन्द्रपूजिता।
कैलाशवासिनी देवी शैलजा परिरक्षतु ॥४३॥
ब्रह्मरूपा च वेदज्ञा श्रुतिसङ्घातकारिणी।
सावित्री ब्रह्मविद्या सा परमा प्रकृति परा ॥४४॥
पराविद्यां परावाणीं परध्यानैकगामिनीम्।
अक्षमालाङ्कुशधरां नमामि ब्रह्मचारिणीम् ॥४५॥
शब्दब्रह्ममयी देवी ह्यक्षरा रावकारिणी।
ॐकारेशी चतुर्वाणी चतुर्दिङ्कीर्तिविस्तरा ॥४६॥
चन्द्रघण्टां स्वयंशब्दां दैत्यकर्णविदारिणीम्।
पूर्णेन्दुसमसौम्यां तां सर्वदां प्रणमाम्यहम् ॥४७॥
असङ्ख्यकोटिब्रह्माण्डसम्भूतिस्थितिकारिणी।
कूष्माण्डा सा महामाया सर्वदा सुप्रसीदतु ॥४८॥

स्वोदरे विश्वमखिलं धारयन्तीं तु सर्वदा।
विना श्रमेण वन्दे तां कूष्माण्डां विश्वधारिणीम् ॥४९॥
महासेनस्य जननी देवसैन्यप्रकाशिनी।
सिंहारूढा विशालाक्षी सा नश्येदुरितं मम ॥५०॥
बालग्रहाभिभूतानां सर्वोपद्रवनाशिकाम्।
सर्वाभीष्टप्रदां देवीं नमामि शम्भुवल्लभाम् ॥५१॥
मूलाधारस्थिते पद्मे चतुर्वर्णसमाश्रिता।
कात्यायनी योगगम्या कल्याणं विदधातु मे ॥५२॥
मृगेन्द्रासनमारूढा कात्यायनतनूद्भवा।
सर्वभूतनियन्त्री सा सर्वदा वरदा भवेत् ॥५३॥
गर्दभासनसंरूढा मुक्तकेशी महोदरी।
चर्मशाटीं समावृत्य क्वचिद्वस्त्रैर्निरावृता ॥५४॥
कालस्य हारिणी भूतद्राविणी विकटानना।
अजेया कालरात्रिः सर्वाशुभेभ्योऽभिरक्षतु ॥५५॥
वृषारूढा शशाङ्काङ्गा त्रिनेत्रा श्वेतवाससा।
मन्दारपुष्पसम्पूज्या शूलटङ्कधरा शिवा ॥५६॥
महागौरीति सा ज्ञेया पूज्या कैवल्यदायिनी।
विभ्रतीं ज्ञानमुद्राञ्च दासिष्ट ज्ञाननिर्मलम् ॥५७॥
चक्रेश्वरी राजविद्या गुह्या गोप्या सरस्वती।
विबुधैर्वन्दिता दिव्यमाल्याम्बरधरा प्रिया ॥५८॥

योगीन्द्रवृन्दसंसेव्यां सर्वाभीष्टैकदायिनीम्।
सर्वलोकस्तुतां सिद्धिदात्रीं तां प्रणमाम्यहम् ॥५९॥

निग्रह उवाच

इमां सर्वेश्वरीं विद्यां योऽधीते प्रत्यहं नरः।
सर्वैश्वर्यमवाप्नोत्ययुतावृत्तिर्यदि कृता॥६०॥
गुरुपुष्ये रविपुष्येऽमायां वापि निशागते।
शक्तिपीठे सिद्धपीठे नवरात्रे विशेषतः॥६१॥
प्राप्नोति द्रविणं ज्ञानं सन्ततिं प्रेयसीं तथा।
अथवा मुक्तिमाप्नोति निष्कामो यदि सम्पठेत् ॥६२॥

निग्रहाचार्य ने कहा - गुरुपुष्य और रविपुष्य के योग में अथवा अमावस्या की रात्रि को शक्तिपीठ या सिद्धपीठ में, विशेषतः नवरात्र में दस हजार आवृत्ति करके इसे सिद्ध करने के बाद इस सर्वेश्वरी विद्या को जो व्यक्ति प्रतिदिन पढ़ता है, वह सभी प्रकार के ऐश्वर्य को प्राप्त करता है। वह धन, ज्ञान, सन्तान और पत्नी को प्राप्त करता है। अथवा यदि निष्कामता से पाठ करता है तो मुक्ति को प्राप्त करता है।

अभिजिदुवाच

भवताराधिता कस्मिन् शैले सा निग्रहेश्वरी।
किं रहस्यं तथा नाम वर्म सर्वं वदस्व मे॥

अभिजित् ने कहा - आपके द्वारा वह निग्रहेश्वरी देवी किस पर्वत में पूजिता हुईं, उनका रहस्य, नाम, कवच आदि सब मुझे कहें।

निग्रह उवाच
ददात्युमङ्गं भक्ताय शोकतापविनाशनम् |
तस्माज्जनैरुमङ्गेति प्रोच्यते परमेश्वरी ||०१||
अगस्तु भास्करः प्रोक्त उमिति क्रोधवर्जनम् |
मार्तण्डयुक्ता चाक्रोधोमगेति कथिता जनैः ||०२||
शतनामानि वक्ष्यामि शृणुष्व मानवर्षभ |
येषां वै पाठमात्रेण सोमङ्गा सम्प्रसीदति ||०३||

निग्रहाचार्य ने कहा - अपने भक्तों के शोक एवं ताप का नाश करके उन्हें उत्साह प्रदान करने से वह परमेश्वरी लोगों के द्वारा उमंगा कही जाती है। भगवान् सूर्य को 'अग' कहते हैं तथा क्रोधरहित होने की 'उम्' संज्ञा है। क्रोध से रहित एवं मार्तण्ड से युक्त होने के कारण लोगों के द्वारा वह उमगा कही जाती है। हे मानवश्रेष्ठ ! अब मैं तुम्हें उमगेश्वरी के सौ नामों को बताने जा रहा हूँ जिनके पाठमात्र से उमंगा प्रसन्न हो जाती है।

आदौ स्नात्वा धौतवस्त्रं धारयित्वा तु चन्दनम् |
नत्वा विघ्नेश्वरं सूर्यं स्वगुरुं भैरवं शिवम् ||०४||

ततो वै कार्यसिद्ध्यर्थे निशामध्ये समागते |
उमङ्गाशैलमारुह्य पूजयेदुमगेश्वरीम् ||०५||
अष्टादशैः षोडशैर्वा दशैः पञ्चैस्तुमानसैः |
यथालब्धोपचारैश्च सत्त्वभावेन पूजयेत् ||०६||
रुद्राक्षमालया रक्तचन्दनेनास्थिमालया |
जपेच्चैव मूलमन्त्रमभावे मणिमालया ||०७||
कृत्वा न्यासविधानन्तु मूलमन्त्रेण साधकः |
ध्यानं कुर्यान्महाबाहो भक्तियुक्तेन चेतसा ||०८||

सर्वप्रथम स्नान करके शुद्ध धोती आदि धारण करके, चन्दन आदि से युक्त होकर विघ्नराज गणेश, अपने गुरुदेव, भैरवनाथ एवं भगवान् शिव को प्रणाम करके फिर अपने कार्य की सिद्धि के लिए मध्यरात्रिकाल के आने पर उमगा पहाड़ पर चढ़कर देवी उमगेश्वरी की पूजा करे। अठारह, सोलह, दस अथवा पांच उपचारों से, मानसिक अथवा जैसी सामग्री उपलब्ध हो, उसके अनुसार सात्त्विक भावना से पूजन करे। रुद्राक्ष की माला, रक्तचन्दन अथवा हड्डी की माला से मूलमन्त्र (नवार्णमन्त्र) का जप करे। अभाव में मणिमाला (स्फटिक, हकीक आदि) का प्रयोग करे। हे महाबाहो ! इसके बाद साधक मूलमन्त्र से ही न्यास आदि करके भक्तियुक्त चित्त से ध्यान करे।

रक्ताम्बरधरा देवी रक्ता सिंहेन्द्रवाहना |
मार्तण्डभैरवयुता शिलाधोभागमाश्रिता ||०९||
उमङ्गाशैलनिलया महामहिषघातिनी |
मगविप्रैः सदा सेव्या भैरवेन्द्रेण पूजिता ||१०||
सर्वसिद्धिकरी भक्तभोगमोक्षफलप्रदा |
देवस्तुता जगन्माता शिवाङ्का चोमगेश्वरी ||११||
शिवाराध्या शिवा सर्वेश्वरी सद्भिः सदा स्तुता |
एवं ध्यात्वाऽनन्यचित्तो भूत्वा चाभीष्टसिद्धये ||१२||
पुण्यानि शतनामानि मध्यगत्या तु सम्पठेत् |
जगत्यप्रकाशितानि निग्रहेण मया श्रृणु ||१३||

वह देवी लाल रंग के वस्त्रों को धारण की हुई है, स्वयं भी लाल रंग की है, सिंहराज के ऊपर बैठी हुई है। मार्तण्डभैरव से युक्त होकर विशाल चट्टान के नीचे आश्रित है। महिषासुर का वध करने वाली वह देवी उमंगा नामक पर्वत में रहने वाली एवं शाकद्वीपीय ब्राह्मणों के द्वारा सेवनीया तथा राजा भैरवेन्द्र आदि के द्वारा पूजिता है। सभी सिद्धियों को देने वाली है, भक्त को भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली है। देवताओं के द्वारा भी उनकी स्तुति होती है तथा वह विश्व की माता है। वह उमगेश्वरी शिव की गोद में भी बैठी हुई है। शिवजी के द्वारा उसकी पूजा होती है तथा वह कल्याण करने वाली है। सबों की स्वामिनी है

तथा सज्जनों के द्वारा सदैव उनकी स्तुति होती है। इन प्रकार से ध्यान करके अनन्यचित्त होकर अपने अभीष्ट कार्य की सिद्धि हेतु मध्यगति से पुण्यदायक सौ नामों का पाठ करे। ये नाम संसार में अभी तक अप्रकाशित हैं, इन्हें तुम मुझ निग्रहाचार्य से सुनो।

शतनामानि

ॐ उमङ्गा उमगेशानी मातृका योगिनी परा |
श्रीविद्या कण्ठनिलया सर्वदेवनमस्कृता ||१४||
शिवा शिवप्रिया तारा शिवपर्यङ्कशायिनी |
कपिला विन्ध्यगेहा च उमङ्गेशी शवासना ||१५||
महाविद्या महायोनिर्महापाशा महाङ्कुशा |
महोदरा महावक्षा महाकेशा महाभुजा ||१६||
कमला कमलेशानी शिवाराध्या शिवस्तुता |
गणेशजननी विश्वमाता विश्वप्रतिष्ठिता ||१७||
विश्वेशा विश्वसाम्राज्ञी विश्वारूढा जयप्रदा |
मार्तण्डभैरवयुता बटुकेनाभिरक्षिता ||१८||
दाक्षायणी पर्वतेशात्मजा गङ्गानुजा उमा |
कौशिकी वसुधा धूमा चोग्रतारा शुचिस्मिता ||१९||
भैरवी कालरूपा च दानवव्यूथभेदिनी |
वसुधा कालिका कृष्णा रक्तपा विकटानना ||२०||

रक्तवस्त्रा पीतवस्त्रा शुभ्रवस्त्रा शुभानना |
शिवारूढा शवारूढा सिंहारूढा तथाम्बिका ||२१||
सर्वाशा चैव सर्वेशा सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी |
अनेका चैकरूपा च ब्रह्मविष्णुशिवानुता ||२२||
अशोकसुन्दरीमाता स्कन्दमाता बलान्विता |
एकास्या च षडास्या च सहस्रास्यामिताननना ||२३||
महिषान्तकरी चन्द्रघण्टा चन्द्रमुखी शुभा |
चन्द्रकान्तियुता सौम्या चन्द्रशेखरवल्लभा ||२४||
ऐलस्तुता महागौरी शाङ्करी पन्नगेश्वरी |
भद्रकाली महाकाली कालकाली तथाद्भुता ||२५||
महाकालप्रियाशेषा सगुणा निर्गुणामला |
श्मशानेशी जगन्माता जगदानन्दकारिणी ||२६||
गुह्यस्थिता महातेजा भैरवेन्द्रवरप्रदा |
वेतालप्रेतडाकिन्यादिभिः पूज्येति कीर्तिता ||२७||

निग्रह उवाच

राज्यं धनं तथा पुत्रं कलत्रं रोगनाशनम् |
यच्चिन्तितं जनैर्नामपाठमात्रेण लभ्यते ||२८||
पठित्वेतानि नामानि दिव्यानि नियतात्मनः |
वर्मपाठेन संसिद्धिर्निर्भयो जायते नरः ||२९||

ततो रक्षाविधानाय सुस्पष्टोच्चारणेन च |
प्रपठेत् कवचं देव्यास्ततो भीतिर्न जायते ||३०||

निग्रहाचार्य ने कहा - राज्य, धन, पुत्र, स्त्री एवं रोग से मुक्ति आदि जो कुछ भी मन में इच्छा हो, वह लोगों के द्वारा इन नामों के पाठमात्र से प्राप्त हो जाता है। इन दिव्य नामों को एकाग्रचित्त से पढ़कर फिर कवच का पाठ करने से व्यक्ति निर्भय हो जाता है। रक्षाविधान के लिए स्पष्ट उच्चारण के साथ देवी के कवच का पाठ करना चाहिए, इससे भय उत्पन्न नहीं होता।

अभिजिदुवाच
कवचं कीदृशं देव्या महाभयविनाशकम् |
कृपया विप्रशार्दूल उमङ्गाया वदस्व मे ||३१||
निग्रह उवाच
अथाहं सम्प्रवक्ष्यामि कवचं महदद्भुतम् |
उमङ्गेशीमहादेव्या नास्ति यज्जगति श्रुतम् ||३२||

अभिजित् ने कहा - हे ब्राह्मणों में सिंह के समान तेजस्वी ! महान् भय का निवारण करने वाला वह उमंगा देवी का कवच किस प्रकार है, वह कृपा करके मुझे कहें। निग्रहाचार्य ने कहा - अब मैं उमंगेश्वरी महादेवी का महान् एवं अद्भुत कवच कहता हूँ जिसे अभी तक संसार में नहीं सुना गया है।

कवचम्

अमरा पातु शीर्षे मां जित्वरा केशकर्दमे ।
ललाटे पातु मां नित्यं त्रिपुरारीश्वरप्रिया ॥३३॥
नेत्रे रक्षतु मेऽजेया भ्रूयुगे गिरिजा तथा ।
उमङ्गा नासिकायाञ्च कर्णौ श्रीजगदम्बिका ॥३४॥
कपोले पातु मां चण्डमुण्डशीर्षापहारिणी ।
मुखे दन्ते च जिह्वायां सर्वदा कमलानना ॥३५॥
सावित्री सर्वदा रक्षेत्कण्ठदेशे समाश्रिता ।
ग्रीवायामादिप्रकृतिर्हृदये त्रिगुणात्मिका ॥३६॥
सन्ध्या कुक्षौ तथा स्कन्धौ पङ्कजायतलोचना ।
देवेन्द्रवन्दिता देवी बाहू मे पातु सर्वदा ॥३७॥
करौ रक्षतु इन्द्राणी अङ्गुल्यग्रं पतिव्रता ।
देवहूतिः सदा रक्षेदुदरं करुणामयी ॥३८॥
अपर्णा मे कटिं पातु पृष्ठमर्चिस्तु सर्वदा ।
वसुन्धरा तथा नाभिं लिङ्गं सा विश्वमोहिनी ॥३९॥
रक्षेदुन्मादयन्ती मे गुदं मेढ्रञ्च भास्वरा ।
उरू च जानुनी पातु श्रीप्रदा विष्णुवल्लभा ॥४०॥
जङ्घे मे पातु देवेशी गुल्फौ पातु तथादितिः ।
प्रसूतिः पातु मे पादौ पादान्ते च सरस्वती ॥४१॥

लोहितं पातु मे रक्तबीजशोणितपायिनी |
नखान् रक्षतु गायत्री चानुसूया सदा त्वचम् ||४२||
अन्तःस्थितान्तथान्याङ्गान्त्रिपुरासुरनाशिनी |
त्रिपुरा त्रिपुरेशी च दशदिक्षु प्रपातु माम् ||४३||
रक्षाहीनं तु यत्स्थानं कवचेनापि वर्जितम् |
सर्वदा सर्वतः सर्वं पातु मां सोमगेश्वरी ||४४||

निग्रह उवाच

इति ते कथितं वत्स कवचञ्चेदमद्भुतम् |
न वै देयमशिष्याय गोपनीयं प्रयत्नतः ||४५||
महाभयेऽथवा युद्धे विषे चाग्नौ जलोद्भवे |
राजदण्डे तथाकाले वने वा हिन्स्रजन्तुषु ||४६||
दशावृत्तिकृतं वर्म नूनं रक्षति पाठकम् |
निर्भयो जायते मर्त्य उमङ्गायाः कृपान्वितः ||४७||
ऐलेन बुधपुत्रेण पुरा शैले प्रतिष्ठिता |
कालान्तरे साधकैश्च भैरवेन्द्रादिभिस्तथा ||४८||
तस्मात्तां पूजयेदम्बां सर्वलोकेश्वरेश्वरीम् |
शक्तिपूजां विना कोऽपि न किञ्चित्कर्तुमर्हति ||४९||
शक्तियुक्तो महेशश्च शक्तियुक्तश्च केशवः |
ब्रह्मा शक्तियुतो भूत्वा स्वकर्मगतिमान् भवेत् ||५०||

निग्रहाचार्य ने कहा - हे वत्स ! इस प्रकार से यह अद्भुत कवच कहा गया है। इसे अशिष्य को कभी नहीं देना चाहिए एवं प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिए। महान् भय उपस्थित होने पर, युद्ध अथवा विष से संकट प्राप्त होने पर, आग लगने अथवा बाढ़ आने पर, राजा के द्वारा दण्डित होने की स्थिति में, अकाल में अथवा वन में हिंसक प्राणियों से संकट की प्राप्ति होने पर इस कवच की दस आवृत्ति करने पर यह पाठक की अवश्य ही रक्षा करता है।

उमंगा देवी की कृपा से युक्त होकर व्यक्ति निर्भय हो जाता है। बुध एवं इला की सन्तान राजा पुरूरवा के द्वारा पूर्वकाल में यह देवी पर्वत में प्रतिष्ठित की गयी थीं। बाद में अन्य साधकों तथा राजा भैरवेन्द्र आदि के द्वारा इनकी प्रतिष्ठा-पूजा आदि हुई। अतएव सभी लोकेश्वरों की भी स्वामिनी जगदम्बिका की पूजा करनी चाहिए। शक्तिपूजा के बिना कोई भी कुछ भी करने में समर्थ नहीं होता है। महादेव शक्तियुक्त हैं, विष्णु भी शक्तियुक्त हैं। ब्रह्मा भी शक्तियुक्त होकर ही अपने कर्म में प्रवृत्त होते हैं।

|| इति श्रीनिग्रहाचार्येण प्रकाशिता निग्रहागमसम्मतागस्त्यप्रोक्तेषु शक्तिसूत्रेषु सृष्टिभाष्यान्तर्गता सर्वेश्वरीविद्या सम्पूर्णा ||

मङ्गलाचरणम्

बाह्यान्तरकलामध्ये भाण्डब्रह्माण्डचारिणीम्।
वेश्यदां त्रिगुणातीतां वन्दे निग्रहकारिणीम्॥ ०१॥
सृष्टिस्थितिविनाशेषु सर्गे सर्गोत्तरे तथा।
स्थितां सञ्चालिकां शक्तिं सृष्टिभाष्येण वर्णये॥ ०२॥
पुरागस्त्येन यत्प्रोक्तं शक्तिसूत्रं महोज्ज्वलम्।
अव्यक्ताद्वैतसदृष्ट्या तद्रहस्यं निबोध मे॥ ०३॥
निग्रहागमतन्त्रेषु निग्रहेश्वरशम्भुना।
रहस्यं निग्रहेश्वर्या यत्प्रोक्तं वै शृणुष्व तत्॥ ०४॥

बाहरी (सांसारिक) एवं भीतरी (आह्लादक) कलाओं के मध्य में ब्रह्माण्डरूपी पात्र में विचरण करने वाली मोक्षदायिनी, तीनों गुणों से अतीत निग्रहकारिणी देवी को मैं प्रणाम करता हूँ। सृष्टि, स्थिति एवं विनाश में, जो संसार तथा संसार से परे की स्थिति में सञ्चालिका शक्ति के रूप में स्थित हैं, उनका मैं सृष्टिभाष्य के माध्यम से वर्णन करता हूँ। पूर्वकाल में अगस्त्य मुनि के द्वारा जो महान् उज्ज्वल शक्तिसूत्र कहा गया था। उसके रहस्य को अव्यक्ताद्वैत की उत्तम दृष्टि से मुझसे सुनो। निग्रहागमतन्त्रों में निग्रहों के स्वामी भगवान् शिव के द्वारा निग्रहेश्वरी भगवती का जो रहस्य बताया गया है, उसे सुनो।

॥अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

अथातः शक्तिजिज्ञासा ॥०१॥ यत्कर्त्री ॥०२॥
यदजा च ॥०३॥ मनोयोनित्वात् ॥०४॥
नान्तरायोऽत्र ॥०५॥ तत्सान्निध्यात् ॥०६॥
तत्कल्पकत्वमौनपाधिकम् ॥०७॥ समानधर्मत्वात्
॥०८॥ तच्च प्रातिभासिकम् ॥०९॥ यद्बन्धः ॥
१०॥ यदारोपाध्यासाद्यैः ॥११॥ यच्चाधिष्ठानलिङ्गम्
॥१२॥ नानात्वात् ॥१३॥ तच्च कालिकम् ॥१४॥
अखण्डोपाधेः ॥१५॥ यामेव भूतानि विशन्ति ॥
१६॥यदोत्तमम् ॥१७॥ यत्प्रोतम् ॥१८॥
तद्विष्णुत्वात् ॥१९॥ ततो जगन्ति क्रियन्ति ॥२०॥
तन्मूलत्वात् ॥२१॥ परिणामो लब्धेः ॥२२॥
नानात्वेऽपि एकत्वमविरुद्धम् ॥२३॥ विचारात् ॥
२४॥ चक्षुरीक्षते ॥२५॥ यस्माददृश्यं दृश्यञ्च ॥
२६॥ दृष्टव्यं व्यपदेशाद्वा ॥२७॥ यतस्तच्छबलम्
॥२८॥ अविनाभावित्वात् ॥२९॥ भिन्नत्वे वा

नियामत्वे ॥३०॥ अतथाविधा ॥३१॥ यत्कृतिः ॥
३२॥ इच्छाज्ञानक्रियास्वरूपत्वात् ॥३३॥ न
सन्नासत् ॥३४॥ सदसत्त्वात् ॥३५॥ तद्भ्रान्तेः ॥
३६॥ यत्सत् ॥३७॥ लीयते ॥३८॥
तत्रैकदेशप्रवादः ॥३९॥ यस्मात्तारतम्यं जन्तूनाम् ॥
४०॥ साम्यं जननमरणयोः ॥४१॥ पौनः पुण्यात्
॥४२॥ यदेव संसारः ॥४३॥ ऊर्णनाभिरिव ॥
४४॥ सादृश्यानन्त्यम् ॥४५॥ तत्सिद्धिरेव तत्सिद्धेः
॥४६॥ तदैक्यात् ॥४७॥ तच्चैतन्यभेदे प्रमाणम् ॥
४८॥तद्बुद्धेः ॥४९॥ तन्नाशे तन्नाशः ॥५०॥ यस्याः
सर्वं पर्वणि पर्वणि ॥५१॥ भूतभौतिकौ च ॥५२॥
अन्यथा ज्ञेयत्वाभावात् ॥५३॥ तन्निर्लेपः
पुष्करपर्णतलवत् ॥५४॥ सद्रूपा ॥५५॥
पुष्पगन्धवत् ॥५६॥ मुक्तः सर्वो बद्धः सर्वः ॥
५७॥ यद्विलासात् ॥५८॥ तत्स्रष्टुत्वानुमितेः ॥
५९॥ लिङ्गान्तरं व्यभिचरितम् ॥६०॥ नो दोषः ॥
६१॥ अविमुक्तिः ॥६२॥ यतते यत्पुराणः ॥६३॥

मुक्तोऽपि तद्गृहीतः ॥६४॥ यत्प्रसादात्तदपि ॥६५॥
यद्विरोधात् पतत्यन्धे तमसि ॥६६॥
पानाद्युपाधेर्मिथ्यात्वात् ॥६७॥ भ्राम्यते जन्तुः ॥
६८॥ भ्रश्यते स्वर्गात् ॥६९॥ अतोऽस्याः स्वातन्त्र्यम्
॥७०॥ निर्विकारे क्रियाभावात् ॥७१॥
बन्धमोक्षयोश्च ॥७२॥ सर्वत्र चिन्त्यम् ॥७३॥
तुच्छत्वे वा निगडवत् ॥७४॥
गिलितविषवद्विरोधोपलब्धेः ॥७५॥तद्योगात्तद्योगः
॥७६॥ संन्यस्तेऽपि तत्सिद्धेः ॥७७॥
तद्यागात्तद्योगः ॥७८॥ तद्भोगात्तद्भोगोऽपि ॥७९॥
न त्यागः ॥८०॥
तद्व्याप्यत्वान्नित्यत्वाच्चेद्बन्धनैयत्यापत्तेः ॥८१॥
नास्तीति भ्रमः॥८२॥ अस्तीत्यतिरिक्तमपि ॥८३॥
पक्षान्तरासिद्धेः ॥८४॥ तदभावाभावात् श्रुतेः ॥
८५॥ लिङ्गमलिङ्गं तल्लिङ्गम् ॥८६॥
सलिङ्गमलिङ्गं यस्याः प्राबल्यात् ॥८७॥
वशीकृतेशत्वात् कामिनीत्वात् मोहकत्वाद्वा ॥८८॥

यन्मातापितरौ ॥८९॥
बीजोत्पत्तेरैन्द्रजालिकत्ववत् ॥९०॥ न तज्जातेः ॥
९१॥ निर्गुणत्वात् ॥९२॥ तत्कामित्वात् व्यासः ॥
९३॥ तत्परो जैमिनिः ॥९४॥ तत्स्वाभिन्नो हयाननश्च
॥९५॥ उक्तवानगस्त्यः ॥९६॥ तद्वेदी पैप्पलायनः
॥९७॥ कठः कर्तृत्वम् ॥९८॥ पराशरः प्राबल्यम्
॥९९॥ वशिष्ठो मोहम् ॥१००॥ परमेष्ठ्यपि मोहम्
॥१०१॥ शुकः स्वात्मानम् ॥१०२॥ मातरं नारदः
॥१०३॥ मन्वानास्तरन्ति संसारम् ॥१०४॥
उक्तलिङ्गैः सद्भिः प्रमाणैः ॥१०५॥ तत्तु तित्तिरि ॥
१०६॥छन्दोगाश्च ॥१०७॥ मारीचस्तद्वादी ॥१०८॥
यच्छिवः ॥१०९॥ हरिरन्तः ॥११०॥ गुरुर्बहिः ॥
१११॥ कालो भेदे दुर्बोधः ॥११२॥ तल्लेशाः ॥
११३॥ दहरव्यापित्वात् ॥११४॥
ब्रह्माण्डान्तर्व्यापित्वात् ॥११५॥
तत्परातद्बहिस्तत्परात्तद्बहिः ॥११६॥ एवं ब्रह्मविदः
॥११७॥ अधर्माद्बन्धः ॥११८॥

धर्मो निवृत्तौ ॥११९॥ न मोहे हिंसा च यस्याः ॥
१२०॥ अतश्चित्तप्रमादः ॥१२१॥
मौद्गलायनिमाठरायणयोः ॥१२२॥ न हि वेदो न हि
वेदो तद्विदः ॥१२३॥ विन्दति वेदात्प्रकृतिम् ॥
१२४॥ तरति तां तस्मात् ॥१२५॥
स वै ब्रह्मभूयाय कल्पते ब्रह्मभूयाय कल्पत इति ॥
१२६॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृतं सृष्टिभाष्यम्

अधुना शक्तिर्जिज्ञास्यते। सर्वशास्त्रवागधिगमनानन्तरं
का शक्तिरित्युत्सुकता भवति। यया विश्वमिदं व्याप्तं
सञ्चालितं विनष्टीकृतं सा का कीदृशा भवतीति जिज्ञासा
भवति विचक्षणैस्तस्माच्छक्तिजिज्ञासेति। ब्रह्मेति
शक्तिरिति बन्धविमोचनीति मायामयीति
मदनान्तकवल्लभेतीत्यानन्दसारस्तवे। सृष्ट्यवस्थायां परा
शक्तिरिति नाम्ना प्रथितेति लक्ष्मीतन्त्रे। सर्वं
खल्विदमेवाहमिति भागवते। यत्पदेन क्रियात्मकता

दृश्यते। सिसृक्षावस्थायाम् अहंतेति नाम्ना प्रथितेति लक्ष्मीतन्त्रे। शक्तेरहं कर्तृत्वभावमिति सिसृक्षायां जायते। यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलान्तिके। तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदेति सप्तशत्याम्। या कर्त्री सर्वजगतामाद्या च कुलवर्धनी। देवी भगवती तस्याः पूजकः परमद्युतिरिति भागवते। कुलमिति वंशश्च कुण्डलिनी यथा कुलार्णवतन्त्रे कुलं कुण्डलिनी शक्तिः। देवीभुजङ्गस्तवे त्वमेकैव कर्त्रीति। या चेष्टरूपाणि विधाय देवी सृष्टिस्थितानाशमयी च कर्त्री।
ब्रह्माच्युतस्थाणुशरीरहेतुस्सा त्वं प्रसीदाद्य पुनर्नमस्त इति शिवपुराणे। तस्मादत्र कर्त्री। सा पालयति संसारं तां पालयति कोऽपि न । तां न संहरते कोऽपि सा सर्वं संहरत्यतो महाकालसंहितायाम्। अजा जनित्री जगतां साजेन समधिष्ठितेति लिङ्गपुराणे। अजा प्रज्ञा पुराणी च त्वमेव परमेश्वरीति शिवपुराणे। अजा तु प्रकृतिः प्रोक्तेति गरुडपुराणे। यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अजेति देव्यथर्वशीर्षे। अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णामिति श्रुतिर्लिङ्गपुराणे च।

सर्वाधिष्ठानत्वेनाजा। मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः श्रुतिरिति। भोगेन बन्धनं योगेन मोक्षं ददाति मनोवृत्त्यानुसारेण। सङ्कल्पप्रभवं मनो यदा बाह्यन्तरभेदाञ्चिनोति तथा शक्तेर्बोधः। बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव चेत्यग्निपुराणे। मनसेन्द्रियविषयान् सङ्गृह्य तेषामसारत्वं ज्ञात्वा ज्योतिःस्वरूपिणीं चिन्तयति। बहुधा जीवतो मन इति श्रुतिः। बहुनात्र किमुक्तेन मनः कर्मद्रुमाङ्कुरम् । तस्मिंश्छिन्ने जगच्छाखश्छिन्नः कर्मतरुर्भवेदिति मोक्षोपायटीकायाम्। तस्मान्मनोयोनित्वात्। शक्तिर्नारायणस्याहं नित्या देवी सदोदितेति तथा तद्धर्मधर्मिणी नित्येति लक्ष्मीतन्त्रे। बुद्धीच्छाप्रयत्ना द्विविधा। नित्या अनित्याश्च। नित्या ईश्वरस्य अनित्या जीवस्येति तर्कसङ्ग्हे। व्यक्ता भवति नित्या सा भक्तिः स्वारूपिकी तथा। सैवानन्दस्वरूपेण नित्या मुक्तेषु तिष्ठतीति प्रकाशसंहितायाम्। योनिर्धरित्री जगतां त्वमेव त्वमेव नित्या प्रकृतिः परस्तात्। यथा वशं क्रियते ब्रह्मरूपं सा त्वं नित्या मे प्रसीदाद्य मात इति शिवपुराणे। विद्याविद्यामहाविद्येति त्रिरूपिणी भूत्वा

सर्वमतति। मुक्तिबोधकारिणी विद्या।
कालदेशस्तिथिबोधिकाविद्या। मोक्षदायिनी महाविद्या।
निरुपाधियुक्ता नित्यप्रत्यगात्मिका। तदिति पुरुषः।
क्षरश्चाक्षरश्च। कर्त्रीरूपेणात्मापरमात्मानौ तस्या
आश्रितौ। सान्निध्यादिति। ज्ञानशक्त्या बोधः क्रियाशक्त्या
प्रवृत्तिर्भवति। भावस्वरूपतया व्याप्नोति।
वियोजनेऽक्रियाशीला युक्ता चैव क्रियावती। मन उपाधिं
प्रगृह्य वृत्त्यात्मिका सोपाधिश्च
निवृत्ताहमिदमक्रियाभावनया ब्रह्मसङ्कल्प्या निरुपाधिरूपा
भवति। शक्तेः कल्पना तदिति। तत्कल्पनया उपाधिं
धत्ते। तदित्युपाधिः कल्पितः। कल्पना शक्तेः कार्यं न तु
ब्रह्मणः। सृष्टेरुपादानं ब्रह्म।
अक्रियत्वादकल्पकोऽकल्पितश्च। शक्त्या तस्मिन्
सागुण्यसाकारत्वोपाधयः सम्भवन्ति। तच्छक्तयोश्च
समानधर्मता। तन्निरुपाधिः शक्तिश्च। तदानन्दस्वरूपं
शक्तिश्च। तदविकारी शक्तिश्च। न कुरुतः स्वातन्त्र्येण।
तत्सङ्कल्प्या ज्ञेयरूपिणा ज्ञानरूपिणी भवति। ज्ञात्रीभावे
ज्ञेयमविकारी। तत्तु ब्रह्म। वस्तुतस्त्वं

तच्छब्दयोश्चानन्तरायरहितेन ज्ञानस्वरूपं सुषुप्तं भवति।
यदा ज्ञानमयी
शक्तिर्ब्रह्मण्यक्रियनामरूपादीन्नामरूपध्वनिज्योतिःस्वरूपे
प्रदर्शयति तदा क्रियाः प्रवर्तन्ते। स्वरूपात्तत्प्रातिभासिकं
यतः शक्त्या दृग्गोचरं भवति। तज्जीवब्रह्मणो वाचकः।
यदा शक्तिः तत्तत्त्वे प्रतिभासनिर्माणं कृत्वात्मदर्शनं
करोति तदा जीवः ईश्वरत्वेन भासते। यदेश्वरे मायारूपेण
प्रतीयते तदा जीवेऽविद्यारूपेण प्रतीयते। यदिति
शक्तिः। तदिति चेतनः। तच्चेतनं क्रियागतियुक्तं
करोति। तत्प्रातिभासिकं बन्धः। शक्तिश्चेतनौ सत्यौ।
तस्मिन्ननेकत्वबुद्ध्या प्रातिभासिकं पश्यति तदेव बन्धः।
जीवत्वमीश्वरत्वमत्यारोपणमध्यास एव बन्धः। तदुपरि
त्वमुपर्यर्थाच्छिवशक्त्युपर्यारोपितः। इदमेवाध्यासः।
रज्जुसर्पवदिति। सर्पं दृष्ट्वा सर्पबुद्धिरध्यासः। रज्जुं दृष्ट्वा
सर्पबुद्धि आरोपणम्। तस्मिन् ज्ञानशक्त्याध्यास
इच्छाशक्त्यारोपणं भवति। यस्याधिष्ठानालिङ्गमिति।
जीवेश्वरौ यस्मिन् भासेते
साधिष्ठानशक्तिर्वस्तुशब्दादिभिर्नानुभूयते।

यस्मिन्नध्यासितमज्ञातञ्च। यस्मिन्नारोपितं तत्कल्पना। अनिश्चितरूपत्वादलिङ्गम्। स्वयमेवाध्यासरूपेणारोपनाम्ना स्वात्मानमध्यासारोपाभ्यामावृत्यते। अलिङ्गस्वरूपे यद्यदुपाधिं गृह्णाति तदेव प्रतीयते। नानारूपेषु जीवेश्वरौ दृश्यवर्गे गोचरत्वेन उपाधीर्धारयतः। तस्मिन्नानात्वं कल्पयित्वा तानि रूपेण योजयति। शब्दशक्त्या रूपं कल्पयति। पदमिति शब्दस्तथार्थ इति दृश्यम्। फलत्वात्सुखदुःखत्यागभोगादयः सम्भवन्ति। नानास्वरूपाणि कालाश्रितान्यवस्थाभेदात्। जागृतिकाले विश्वमिति। स्वप्नकाले तैजस इति। सुषुप्तौ प्राज्ञ इति। समाध्यवस्थायामव्यक्तमिति। सर्वेषु कालेषु नानारूपधरा शक्तिः। यावद्रज्जुरूपेऽज्ञानं पश्यति तावदेव तस्याध्यासारोपसर्पवद्भासते। कालरूपिण्युपाधिर्धार्यते शक्त्याखण्डत्वेन। शक्तिः स्वयमेवाखण्डभावनया यद्यत्करोति तत्तदेव सर्गः। कालस्य नियमनं करोति। होरादिवारात्रिमासायनवत्सरयुगमन्वतरकल्पपर्यन्तं कालपरिमाणं प्राणशक्त्या गतिमत्या धारयति। कालोपाधियुक्तायां शक्तौ सर्वमिदं दृश्यादृश्यं

जडचेतनात्मकं जगत्प्रलीयते। आत्मना विन्दते वीर्यं
विद्यया विन्दतेऽमृतमिति केनोपनिषदि।
सर्वदेहिनामदेहिनाञ्च या श्रेष्ठामलाविकारिणी भवति
तस्मादुत्तमा। कर्मस्वातन्त्र्येण कमपि प्रतिबन्धितं न
करोति तस्मादुत्तमा। सर्वावस्थासु भूतेन्द्रियग्रामेषु
प्रोतमस्ति स्थितितया। विचारपटले, साक्ष्यसङ्घे,
कल्पितेषु च तिष्ठति तस्मादुत्तमा। स्थितिप्रधानतया
पोषको विष्णुः। तत् संज्ञया तस्य बोधः।
सर्वाधिष्ठानत्वेन सकलावस्थायां व्याप्तस्तस्माद्विष्णुः।
कालः सर्वोपरिः। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं
कालवशीकृतम्। तस्मिन् काले दृगीश्वरे जगत् स्थितं
क्रियाशीलञ्च। कालस्तु मूलं सर्वेषाम्। तस्मिन्
साक्ष्यदृश्यवर्गादयो निवसन्ति जायन्ते प्रलीयन्ते च।
सर्वमूलत्वेन कालः श्रेष्ठः। कालशक्तिः स्वयमेव परिणामं
जनयति। अवस्थाश्च। जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तौ
विश्वतैजसप्राज्ञसंज्ञकेषु चेतनावस्थासु
भूतवर्तमानभविष्यकालेषु कर्मपरिणाममुत्सर्जयति।
एकैव शक्तिर्नानाघटनास्थितिभेदेन नानारूपेषु प्रतिभासते

परन्तु स्वैकत्त्वं न त्यजति। तस्मात्सर्वाणि रूपाणि परस्परमविरुद्धानि भवन्ति। नैकत्त्वभङ्गेन। विशेषेण चरणं पदार्थादिनिर्णये ज्ञानमिति विचारस्तस्या बोधो विचारादेव। क्रियायां भावेषु नानात्वबुद्ध्या भ्रमस्याशंका भवति। तस्माद्विचारेण ज्ञायते। कालशक्तिः कीदृशी प्रतीयते ? इन्द्रियजन्यता शक्तिः प्राथमिकी। नेत्रयोर्दृश्ये नानात्वं दर्शयति। जीवोऽदृश्ये विचारयति दृश्ये च। तेन दृश्यं चित्ते स्थाप्यते, भावानुभवं सङ्गृह्यतेऽदृश्यं जिज्ञास्यते। तस्मादृश्यमदृश्यमनुभवति। नेत्रौ सम्प्राप्य दृष्टत्वेन कालप्रेरणया अवस्थासु परिवर्तते। जागृत्यवस्थायामिन्द्रियजन्यानि बाह्यदृश्यानि भिन्नानि पश्यति। जगद्दृश्ये सृष्टिं कल्पयत्यनुभवति। स्वप्नकाले स्वयमेव दृश्यं भवति द्रष्टा च। सुषुप्तौ समाध्यवस्थायां वा बीजत्वेन दृश्यादृश्यं धारयति। भूतवर्तमानभविष्य इति त्र्यवस्थासु, विश्वतैजसप्राज्ञाव्यक्त इति चतुरवस्थासु सृष्टिविकासचरमह्रासविनाश इति पञ्चावस्थासु यत्किञ्चित्प्रतीयते तद्ब्रह्मणः शबलं भिन्नमिति। अविनाभाव इत्यभिन्नः। क्षणार्द्धायापि

दृश्यवर्गात्कालशक्तिर्भिन्ना न भवति। सा सर्वं दृश्यजगत्पश्यति। स्वनिर्मिताभ्यां भावदृश्याभ्यामनुभवति। एषानुभूतिर्नित्या। तस्याः प्रतीतिर्द्विधा। एकाभिन्ना सञ्चालिकापरा भिन्नत्वादनुभवं करोति। यदा भिन्ना तदा चेतनत्वेन लीलां करोति। यदाभिन्ना तथा दृश्यत्वेनोत्पत्तिस्थितिलयादीन् करोति। एतस्मात् भिन्ना चैवाभिन्ना भवति। भिन्नाभिन्ना क्वचिद्भिन्नेति श्रीसूक्तशङ्करभाष्ये निग्रहाचार्यः। न स्वयं तत्त्वतो दृश्यरूपं न जड एव। अतथेति। न तथारूपत्वेन भासिता भवति। दृश्यादृश्ये निरुपाधितत्त्वं तथारूपमस्ति किन्तु शक्तिरतथा। न रूपमस्येह तथोपलभ्यत इति श्रीमद्भगवद्गीतायाम्। शक्तिश्चेतनादभिन्ना। सूर्यप्रभावदिति। हिमशैत्यवदिति। सूर्यपिण्डस्तु जड एव। प्रभया प्रकाशरूपी भवति। शक्तिरेव क्रियागतिनिमित्ता। इच्छेति कामस्वरूपिणी। वृत्तिरिति जीवनिकायपोषणम्। वृत्तिदासीति देवीभागवते। वृत्तिरूपेण ज्ञानोपाधिं धारयति। ज्ञानरूपेण क्रियोपाधिं धारयति। इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिस्त्रयं यद्भावसाधनमिति

सीतोपनिषदि ब्रह्मवाक्यम्। इच्छाज्ञानक्रियाशक्तयः सदसदिति नोपवर्ण्यन्ते। भिन्नभाव इच्छा भवति। अभिन्नत्वे नैव। अभिन्नभाव इच्छाभावः। इच्छाभावे क्रियाभावः। क्रियाभावे ज्ञानाभावः। एवं इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिसञ्चारहेतवे भिन्नार्थे सम्वेदनावश्यकमस्ति। सति असति चोभयरूपे प्रतीयते। दृश्यजगत्यसत्तायाः सत्तायाश्च प्रतीतिस्तयैव प्रतीयते। स्मृतिषु कल्पनास्विन्द्रियजन्यविषयानुभवेषु च सद्वेदना तया एवाभावश्चापि। तदेवमहं पदे प्रतीतिः कस्मिन्नधिष्ठाने भवति ? अधिष्ठानमहङ्कारो भ्रान्त्या भिन्नवद्भासते। इच्छाज्ञानक्रियाशक्तौ त्वंपदस्य च तत्पदस्यावस्थिति भवति। शक्त्यैव वृत्तिरूपेण तद्भान्तेरधिष्ठानं भवति। सत्स्वरूपी यथा प्रतीयते तथा शास्त्राणि सद्रूपमिति मन्यन्ते। तत्सत् शक्तौ प्रतीयते। अभावे सर्वं जडवत्प्रतीयते। संविदवस्था शक्त्या रूप एव। सर्वं तस्यां विलीयतेऽन्तकाले। व्योमादितत्त्वानि शब्दादितन्मात्राणि नेत्रादीन्द्रियाणि सर्वाणि शक्तौ प्रलीयन्ते। शास्त्रवेत्तारस्तामेकदेशीति वदन्ति।

न व्यापकं मत्त्वांशरूपिणीं मन्यन्ते भ्रमादेव। जन्तूनां जीवने तारतम्यता भवति। श्रेष्ठश्च कनिष्ठश्च। बली निर्बलश्च। विशालो लघुकायश्च। जलानिलभूचरादयश्च। शक्त्याः प्रभावेण भेदा दृश्यन्ते। जन्तवो जन्ममृत्युचक्रे निमग्नाः। जीवनमध्यभागे तारतम्यता दृश्यते। अव्यक्तादीनी भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत। अव्यक्त निधनान्येव तत्र का परिदेवनेति पुराणेषु श्रीमद्भगवद्गीतायाञ्च। नत्वेकबारमपितु बारम्बारं जायते म्रियते च। देहपरिवर्तनहेतवे जन्ममृतिचक्रे सर्व आबद्धाः। संसृतेर्जन्ममृतिचक्रं कदा जन्तुभ्यश्चलिष्यति ? यावत्संसारस्तावत्। जिजीविषा संसृतेः कामना। अहं स्याम इति संसारस्तावज्जन्ममृत्युचक्रमपि। कस्मात् सृजनम् ? यथा मर्कटकः स्वनाभिमण्डलात्स्वांशेन तन्तुं निष्क्रामति भक्ष्येभ्यः पाशहेतवे, यथा कोशकीटकः स्वाङ्गेष्वात्मनिःसृततन्तुभिर्बध्नाति तथा शक्तिः स्वांशेन संसारं रचयति मर्कटकवदित्यर्थः। कस्मादूर्णनाभिरिव ? पूर्वकृतकर्मजन्यसूक्ष्मसंस्कारपरिणतदेहस्वभावतया नूतनं नूतनं देहं विचिन्वन्नानाविधानन्तक्रियाकलापेषु संलग्नो

भवति। प्रकृतेः सिद्धिरेव ब्रह्मसिद्धिः। प्रकृतिं पुरुषञ्चैव विद्ध्यनादी उभावपीति श्रीमद्भगवद्गीतायाम्। तद्रूपं ब्रह्म, त्वंरूपो जीवस्तद्रूपं त्वंरूपेण सिद्ध्यते साध्यसाधकविधानेन। शक्तिशिवयोरभेदः। अहं ब्रह्म स्वरूपिणिती देव्यथर्वशीर्षे।

दुग्धशुभ्रतावत्सूर्यप्रभावद्भिमशैत्यवच्छिव - शक्त्यात्मकोऽभेदः। चैतन्ये ब्रह्मण्यक्रियता। शक्तिसंयोगादभिन्नगत्येच्छा भवति। तद्ब्रह्म त्वंरूपिणि जीवे भासते क्रियाशीलत्वात्। तद्ब्रह्म चैतन्यरूपी प्रमाणः। प्रमाता शक्तिः। प्रमाणं भोक्ता चैतन्यम्। प्रमेयं दृश्यम्। नानाविधदेहेषु नानासंस्कारप्रवृत्तिकारणेन चैतन्यभेदः प्रतीयते। पुराणपदं प्रगृहीत्वानादित्वात्प्रवृत्तिः। प्रज्ञाशक्त्या बुद्धश्चैतन्योऽव्ययो निरुपाधिः। यत्र प्रवृत्तिः प्रसरति तच्छक्तिः। तद्बुद्धिनिवृत्तौ त्वमुपाधिरपि निवर्तते। समये समये कालरूपं नामरूपमयं जगद्बुद्धेः स्वरूपः। विश्वं सृष्टिश्च पञ्चभूतेषु व्यवस्थिताः सन्ति। भूतभौतिकादिरूपेषु भासमानश्चैतन्यः प्रकृत्या सह ज्ञेयज्ञातारूपेण भासते।

यथा पद्मपत्रमम्भसा न लिप्यते तथैव शक्तिर्ज्ञेयब्रह्मणि निवसती सति न लिप्यते। असद्रूपे संसारे भूत्वापि सत्तानिस्तरणं न भवति। यथा पुष्पे गन्धं भवति किन्तु तत्तु पुष्पेण न लिप्यते। पुष्पं गन्धं बाधयितुं न शक्नुते किन्तु गन्धेन सर्वतो लिप्तं तथैव जीवत्वे चैतन्यो मुक्तोऽप्यहङ्कारेण उपाधिना बद्धः। जडचेतनमयः संसारोऽयं शक्तेः प्रेरणया बद्धमुक्ताद्युपाधिभिस्तस्या विलासमात्रमेव। तदुपाधौ स्रष्टृत्वं दृश्यते शक्तिसान्निध्यात्। तद्दृश्यं चैतन्यस्वरूपमवभासते। लिङ्गान्तरे शक्तिश्चैकत्वं दर्शयति तथापि स्वरूपतया निरुपाधित्वेन तस्यां दोषो न गण्यते। शक्तिरेव चेतनेन साकं संयुज्य बन्धं वियुज्य मुक्तिमनुभवति। अनादित्वात्पुरा नवं नवं भवति पुराणः। स्वभावतो मुक्तोऽप्यात्मा तद्भिन्नभ्रान्त्यात्मानं बद्ध इव मन्यते। तद्भ्रमोच्छेदः शक्तेः प्रसादादेव। शक्तिविरोधेनात्मरूपं विस्मृत्य तमसि लोके जन्ममरणचक्रे पतति। चतुर्विंशतितत्त्वभोगलालसयोपाधियुक्तो भूत्वा मिथ्या जगति भ्रम्यते चेतनेन। जन्ममरणचक्रे

मनःकल्पनयान्नपानादिलोलुपो भूत्वा जन्तुर्भ्रमन्परिभ्रमन्
स्वर्गादधः पतति। यथा ब्रह्म स्वात्मनि स्वतन्त्रो
निरपेक्षश्च तथैव शक्तिः। ब्रह्मणो निर्गुणसगुणावतारौ
शक्त्या प्रकटीकृतौ भवतः। स्वयं निर्विकारा भूत्वा
कर्त्रीरूपेण क्रियाभावं प्राप्नोति। जीवस्यात्मशक्त्या जीवे
बन्धमोक्षौ कल्पितौ। नास्ति ज्ञेयश्चिन्त्योऽपितु ज्ञाता
यस्मादभेदस्तयोः। जडत्वे शक्तिर्निष्प्रभाविणी।
चेतनत्वेऽष्टपाशैर्निगडस्वरूपिणी। अज्ञात्वात्मानं पदेन
बन्धोऽहमिति मननं विषग्रहणम्। पदेन क्षरपदं देहनामा
गृह्यते। मायाब्रह्मणी चेतनशक्ती पुरुषप्रकृती
साम्यत्वादनात्यन्तरूपत्वात्योगयोग्ये। विलासे भेददर्शनेन
प्रवृत्तिन्यासो द्वैतः। कीदृशो योगः ? यजनशक्तिसंयुतो
योगः फलदानत्वात्। यथा तस्मिन् योगयागौ तथैव भोग
ईश्वरस्यांशीभूतस्य जीवस्योपाधिना। स्वातन्त्र्येण
शक्तिर्भोक्तृत्वोपाधौ भोगकर्मणि युक्ताप्यलिप्ता। निर्गुणेन
व्याप्यत्व उभाभ्यां नित्यत्वे सगुणेन बन्धस्वरूपत्वे
त्रिधर्मिणी शक्तिः सत्तायां स्वतन्त्रा। नास्ति माया
यैर्भण्यते तत्तु भ्रमो यस्मादक्रिये ब्रह्मणि

कथञ्चिन्तनहेतुर्विना शक्त्या ? अस्ति माया यैर्भण्यते तत्तु
नोपयुक्तं यस्मादस्तीति चेतनस्य ब्रह्मणो विषयः ।
नास्त्यस्तीति पदयोरधिष्ठानं शक्तिर्न तु वाच्या । न प्रकृतेः
परिणामं जगत् । जगत्तु मिथ्या । कार्यकारणबाधत्वेन
कथं स्यात्प्रकृतेर्मिथ्यात्वम् ? एवं पक्षविपक्षयोरसिद्ध एव
यच्छक्तिरस्ति न वा । तद्भावाभावानुभवयोश्च शक्तिरेव
कर्त्री ब्रह्मणोऽक्रियत्वात् । लिङ्ग्यतेऽनेन इति
निर्देशलक्षणं लिङ्गम् । देशकालवतुष्वनिर्देश्यत्वाद्ब्रह्म
लिङ्गरहितं केवलं तल्लिङ्गमिति । स्वयमेवात्मलिङ्गतां
प्राप्नोति यस्याः प्राबल्यात्सा शक्तिस्तस्याः कर्त्रीभावेन
तस्मिन् सलिङ्गालिङ्गभावौ जायेते । ज्ञानस्वरूपिणं
तद्वशीकरणहेतवे तत्कामिनी भूत्वाथवा
मोहकप्रवृत्त्येच्छामयी शक्तिः कामं प्रकाशयति यथा
सन्तानजन्महेतौ मातापितरौ तथा सर्गहेतौ शक्तिब्रह्मणी ।
द्वैताद्भेदभावनया सर्गो जायते भ्रमत्वादभ्रमेणाकर्तृत्वम् ।
न सूयते शक्रजालिकं जगन्नास्ति परिणामो वा यथा न
रज्जुः सूयतेऽहिमविद्यया प्रतिभासतेऽन्तःशक्तिप्रेरणया ।
ततो न जायते जगद्यस्मात्तन्निर्गुणम् । त्वमपि निर्गुण

एवाक्रियसक्रियौ। तस्मादत्र न शक्तेः परिणामं जगन्न
ब्रह्मोपादानत्वमत्रैन्द्रजालवदिति। वेदव्यासो ब्रह्मसूत्रकारो
वदति कामनया जायते जगद्वैतदृष्ट्याद्वैतदृष्ट्या तु न
कामनाभिन्नत्वात्। शक्तेस्तत्पर इति जैमिनीयोक्तिः।
हयग्रीवो ब्रूते तदभिन्ना शक्तिस्तस्य मतस्य
समर्थकोऽगस्त्यः। ज्ञानमयी सा ब्रह्मज्ञानिनी शक्तिः
संविच्चिन्मयीति वदति पैप्पलायनः। कठो ब्रूते शक्त्या
प्राधान्यत्वेन कर्तृत्वशक्तिः। इच्छाज्ञानक्रियाशक्तौ शक्तेः
प्राबल्यमिति पराशरोक्तिः। मोहेन द्वैतं सृजन्ती
जगन्निमित्ता भवतीति वशिष्ठश्च परमेष्ठी जगत्कर्ता ब्रह्मा।
शुको मन्यत आत्माशक्तयोरभेदः। जननीति शक्तिर्नारदो
मातृभावात्। संसारसंसृतेर्निस्तरणं शक्त्येति
चतुर्दशमनवः। शास्त्रेषु पूर्वोक्तलक्षणप्रामाण्यं विद्यते।
तदेव शक्तिरद्वैतदृष्ट्येति तित्तिरिः छान्दसा वेदज्ञा अपि।
शब्दब्रह्मसमर्थको मारीचः। चेतनस्य
विश्वतैजसप्राज्ञावस्थासु या
र्जागृतस्वप्नसुषुप्त्यवस्थासूद्भूयते सा शक्तिरिति शिवः।
निवृत्तौ सर्वं यस्मिन् यासां वा प्रलीयते सान्तकारिणी

शक्तिरिति विष्णुः। ब्रह्मणो बहिर्भूत्वा विलासं करोति बृहस्पत्युक्तिः। भेददृष्ट्यां द्वैते वा कालब्रह्म न ज्ञायते। तत्कालब्रह्मणो लेशा वत्सरयुगादयो जगत्सञ्चालयन्ति। दहरे सूक्ष्मतमात्मन्याकाशे सुषुम्नारूपेण व्याप्नोति ब्रह्म प्रति गमनं करोतीति शक्तिरित्यारुणयो यस्मादारुणयो दहरमिति श्रुतिगीतायामेवं ब्रह्माण्डं पिण्डमिवान्तर्बहिर्व्याप्नोति। यदा शक्तिस्तत्परायणा भवति तदा तद्बहिर्निःसृत्य प्रेम्णा तद्गमनं करोत्येवं द्वैतबुद्ध्या जायते जगदेवं ब्रह्मविदो वदन्ति। धारणया धर्मस्तस्य परित्यागोऽधर्मस्तस्माद्बन्धः। कौलश्रुतिभिरुदीर्यते यदेति ब्रह्म तद्धर्मोऽधर्म इति लक्षणत्वात्तद्बन्धो धर्मे ब्राह्मीधारणायां निवृत्तिर्मोक्षः। मोहकालेऽपि यस्या हननं नोपलभ्यते सा शक्तिस्तस्माच्चित्तस्य प्रमादाल्लुप्तरूपा भवति रूपवत्सु क्रियात्वं धारयतीति ब्रूते मौद्गलायनिर्माठरायणश्च। नान्यं जानाति शक्तिर्ज्ञानरूपिणी तया युक्तो जीवोऽप्यृते ब्रह्मणि वेदज्ञानेन जीवः प्रकृतिं वेत्ति स्वोद्धारञ्च करोति भवार्णवाद्ब्रह्म ज्ञात्वा ब्रह्मणि स्थितो जीवो ब्रह्म भूत्वा

ब्रह्मणा सह रमत इत्यर्थः।

हेमलता भाषानुवाद

अब शक्ति की जिज्ञासा की जाती है। सभी शास्त्रों की बात को जानने के बाद "शक्ति क्या है", इसे जानने की इच्छा उत्पन्न होती है। जिसके द्वारा यह संसार व्याप्त है, सञ्चालित है और नष्ट कर दिया जाता है, वह शक्ति क्या होती है, इसे जानने की इच्छा विद्वान् करते हैं, अतः शक्ति की जिज्ञासा है। वह ब्रह्म है, शक्ति है, बन्धन से मुक्त करने वाली है, मायामयी है, कामदेव का अन्त करने वाले शिवजी की प्रिया है, ऐसा आनन्दसारस्तव का कथन है। सृष्टि की स्थिति में वह परा शक्ति के नाम से कही जाती है, ऐसा लक्ष्मीतन्त्र का वचन है।

देवीभागवत में कहते हैं - जो भी कुछ है, वह सबकुछ मैं ही हूँ। यत् पद से क्रियात्मकता देखी जाती है। सृजन करने की इच्छा के समय अहंता संज्ञा से युक्त होती है, ऐसा लक्ष्मीतन्त्र का वचन है। अहंभाव से युक्त होकर शक्ति में सृजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है। जो कुछ भी सत् अथवा असत् वस्तु सम्पूर्ण जगत् में है, उन सबों में जो भी शक्ति है, वह तुम उपासिता हो, ऐसा सप्तशती में कहते हैं। जो सम्पूर्ण संसार की रचना करने वाली हैं, सबसे पहले से जो स्थित हैं, कुल की वृद्धि करने वाली हैं। वह भगवती देवी हैं, जिनकी पूजा करने वाला

भी महान् तेज से युक्त हो जाता है, ऐसा देवीभागवत का वचन है। कुल का अर्थ वंश एवं कुण्डलिनी शक्ति दोनों है, जैसा कि कुलार्णव तन्त्र में कहते हैं - कुण्डलिनी ही कुल है। तुम्हीं सबों की एकमात्र कर्त्री हो, ऐसा देवीभुजङ्गस्तोत्र का वचन है। शिवपुराण में कहते हैं, जो अपनी इच्छा से रूपों को धारण करके सृष्टि में स्थित है, उसका नाश करती है तथा उसका निर्माण भी करती है। जो ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के सगुणावतार की कारणभूता हैं, ऐसी तुम्हें आज हम बारम्बार नमस्कार करते हैं, ऐसा शिवपुराण का वचन है। अतएव कर्त्री है।

वह पूरे संसार का पालन करती है, उसका पालन कोई नहीं करता। उसका कोई संहार भी नहीं करता अपितु वही सबों का संहार करती है, ऐसा महाकाल संहिता में है। लिङ्गपुराण में कहते हैं कि वह अजा सम्पूर्ण संसार को जन्म देने वाली, अज (शिव) के साथ स्थित है। तुम ही अजा, प्रज्ञा, प्राचीन और सबों की स्वामिनी हो, ऐसा शिवपुराण का कथन है। गरुडपुराण में अजा को प्रकृति बताया गया है। जिसकी उत्पत्ति का कारण अथवा निमित्त ज्ञात नहीं है, इसीलिए उसे अजा कहते हैं, ऐसा देव्यथर्वशीर्ष में है। लिङ्गपुराण एवं श्रुतिवाक्य है कि वह एक अजाशक्ति रक्त, शुक्ल एवं कृष्णवर्ण की है। सबों की उत्पत्ति का कारण होने से अजा है। मन ही मनुष्यों के बन्धन एवं मोक्ष का कारण है, ऐसा वेदों का वचन है। भोग के माध्यम से बन्धन

तथा योग के माध्यम से मोक्ष देता है, जैसी भी मनोवृत्ति हो। सङ्कल्प में क्रियाशील मन जब बाहर और अन्दर के भेदों को चुनता है, तब शक्ति का बोध होता है। बुद्धि को सारथी एवं मन को विषयों का ग्रहण करने वाला जानो, ऐसा अग्निपुराण का कथन है। जीव मन के माध्यम से इन्द्रियगत विषयों का का संग्रह करके उनकी सारहीनता को जानकर ज्योतिःस्वरूपा प्रकृति का चिन्तन करता है। श्रुति कहती है कि मन बहुत प्रकार से क्रियाशीलता दिखाता है। मोक्षोपायटीका में वचन है कि अधिक कहने से क्या लाभ ? मन ही कर्मरूपी वृक्ष का अंकुर है। उसके नष्ट हो जाने पर संसार में स्थित कर्मशाखाएं भी नष्ट हो जाती हैं। अतएव मन ही माध्यम है, ऐसा कहा।

लक्ष्मीतन्त्र में कहते हैं - मैं सदैव सत् स्वरूपिणी, नारायण की शक्ति, देवी और नित्या हूँ। साथ ही उनकी सद्धर्मिणी नित्या हूँ। बुद्धि एवं इच्छा का प्रयत्न दो प्रकार से होता है। नित्या एवं अनित्या। ईश्वर की नित्या एवं जीव की अनित्या होती है, ऐसा तर्कसंग्रह का कथन है। प्रकाश संहिता में वचन है - वह नित्या भक्तिरूपिणी स्वाभाविकी ही व्यक्त हो जाती है। आनन्दस्वरूप होकर मुक्तजनों में वही नित्या प्रतिष्ठित रहती है। आप संसार की उत्पत्तिकर्त्री हैं, उसे धारण करती हैं, आप ही नित्या प्रकृति हैं, जिस प्रकार से ब्रह्मरूप चेतन आपके द्वारा वशीभूत किया जाता है, ऐसी सबों से परे नित्या मातृरूपिणी आज प्रसन्न हों,

ऐसा शिवपुराण का वचन है। विद्या, अविद्या एवं महाविद्या, ये तीन रूपों को बना करके सबों में व्याप्त रहती है। जो मुक्ति का बोध कराये, वह विद्या है। जो काल, देश, स्थिति आदि (परिवर्तनशील) तत्त्वों का बोध कराये, वह अविद्या है। जो मोक्ष प्रदान करे वह महाविद्या है।

निरुपाधि से युक्त होकर नित्यस्वरूप प्रत्यगात्मिका है। यहाँ तत् पद क्षर एवं अक्षर पुरुष का वाचक है। कर्त्रीरूप में जब रहती है तो आत्मा एवं परमात्मा उसके आश्रित रहते हैं। सन्निधि से ऐसा होता है। ज्ञानशक्ति से बोध एवं क्रियाशक्ति से प्रवृत्ति होती है। भावस्वरूप से सबों में व्याप्त होती है। ब्रह्म से भिन्न होने पर क्रिया नहीं करती है, अपितु ब्रह्म से युक्त होकर ही क्रियाशीला होती है। मन की उपाधि को ग्रहण करके जब सोपाधि रहती है तो वृत्ति से युक्त होती है। ब्रह्म की संगति से यह मैं हूँ, ये है, आदि क्रियाभावना से रहित होकर, निवृत्त होकर निरुपाधिरूपा होती है। शक्ति की कल्पना को तत् कहते है। तत् की कल्पना से शक्ति उपाधि को धारण करती है। कल्पना शक्ति का कार्य है, ब्रह्म का नहीं। सृष्टि का उपादान ब्रह्म है। अक्रिय होने से ब्रह्म किसी का कल्पक अथवा किसी से कल्पित नहीं हो सकता। शक्ति के कारण ही उसमें सगुणता, साकारत्व आदि उपाधियां सम्भव होती हैं। तत् एवं शक्ति में समानधर्मता है। तत् निरुपाधि है एवं शक्ति भी।

तत् आनन्दस्वरूप है तथा शक्ति भी। तत् अविकारी है और शक्ति भी। ये दोनों स्वतन्त्र रूप से कार्य नहीं करते। ज्ञेयरूपी तत् की संगति से ज्ञानरूपिणी होती है। ज्ञात्रीभाव मे ज्ञेय अविकारी होता है। वह तत् ब्रह्म है। वस्तुतः त्वं एवं तत् शब्द के अन्तराय रहित होने से ज्ञान सुषुप्त रहता है। जब ज्ञानरूपिणी शक्ति ब्रह्म के अक्रिय नाम-रूप आदि को नाम-रूप-ध्वनि-ज्योतिःस्वरूप में प्रदर्शित करती है तब संसार में क्रियाओं का प्रवर्तन होता है। स्वरूप से वह तत्त्व प्रातिभासिक है क्योंकि वह शक्ति के द्वारा देखा जाता है। यहां तत् पद जीव एवं ब्रह्म का वाचक है। जब शक्ति तत्तत्त्व में प्रतिभास का निर्माण करके उसमें अपना दर्शन करती है तब जीव ईश्वर के रूप में दिखायी पड़ता है। जब ईश्वर में मायारूप से प्रतीत होती है, तब जीव में अविद्यारूप की प्रतीति होती है।

यत् का अर्थ शक्ति है। तत् का अर्थ चेतन है। उस चेतन को क्रिया एवं गति से युक्त करती है। तत् का प्रातिभासिकत्व ही बन्ध है। वस्तुतः शक्ति एवं चेतन दोनों ही सत्य हैं। उसी तत् में अनेकत्व मानकर प्रातिभासिक तत् का दर्शन करती है, यही उसका बन्ध है। जीवत्व एवं ईश्वरत्व में आरोपण एवं अध्यास ही बन्ध है। तत् एवं त्वं के ऊपर अर्थात् शिव एवं शक्ति के ऊपर आरोपित है। रस्सी एवं सर्प की भांति यही अध्यास है। सर्प को

देखकर उसमें सर्पबुद्धि करना अध्यास है। रस्सी को देखकर उसमें सर्पबुद्धि करना आरोपण है। तत् में ज्ञानशक्ति से अध्यास एवं इच्छाशक्ति से आरोपण होता है।जिसका अधिष्ठान अलिङ्ग है। जीव एवं ईश्वर जिसमें प्रतिभासित होते हैं, वह अधिष्ठानशक्ति वस्तु, शब्द आदि के द्वारा अनुभव नहीं की जा सकती है।

जिसमें अध्यास होता है, वह अज्ञात है। जिसमें आरोप होता है, वह कल्पना है। अनिश्चित रूप होने से अलिङ्ग है। शक्ति स्वयं ही अध्यास रूप एवं आरोप नाम, इन दोनों से स्वयं को बांधती है। अलिङ्गस्वरूप में जिस जिस उपाधि को ग्रहण करता है, वैसा ही प्रतीत होता है। नाना रूपों में जीव एवं ईश्वर दृश्यवर्ग में गोचर होकर उपाधि को धारण करते हैं। तत् में शक्ति नाना भावों की कल्पना करके उन्हें रूप से जोड़ती है। शब्दशक्ति से रूप की कल्पना करती है।

पद का अर्थ शब्द है एवं दृश्य को अर्थ कहते हैं। उसी फल के कारण सुख-दुःख, त्याग-भोग आदि सम्भव होते हैं। काल के ऊपर आश्रित होकर अवस्था भेद से अलग अलग स्वरूप होते हैं। जागृत अवस्था में विश्व कहलाता है। स्वप्नकाल में तैजस और सुषुप्ति की अवस्था में प्राज्ञ कहलाता है। समाधि की अवस्था में अव्यक्त होता है। सभी कालों में शक्ति अलग अलग

रूप धारण करती है। जब तक रस्सी में अज्ञान को देखती है तब तक ही उसमें सर्प का अध्यास एवं आरोप प्रतीत होता है। शक्ति के द्वारा अखण्डरूप से कालरूपिणी उपाधि को धारण किया जाता है। शक्ति अपनी अखण्ड भावना से जो जो कार्य करती है, उसे सर्ग कहते हैं। यह काल का नियमन करती है।

होरा, दिन, रात, मास, अयन, वर्ष, युग, मन्वतर एवं कल्पपर्यन्त कालपरिमाण को गतिमती प्राणशक्ति के द्वारा धारण करती है। कालोपाधि से युक्त शक्ति में यह सम्पूर्ण दृश्य एवं अदृश्य, जड-चेतनमय संसार विलीन हो जाता है। आत्मतत्त्व को जानकर व्यक्ति बल, पराक्रम, शौर्य, ओज, पौरुष आदि को प्राप्त करता है तथा विद्या के द्वारा अमृतरूप परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होता है। सभी देहधारियों में तथा देहरहितों में श्रेष्ठा, निर्मला, अविकारिणी होती है, अतएव उत्तमा है। कर्म स्वातन्त्र्य के कारण किसी को प्रतिबन्धित न करने से उत्तमा है।

सभी अवस्थाओं में, पञ्चभूत एवं दशेन्द्रियसमूह में स्थितिरूप से ओतप्रोत है। जीवों के विचार पटल में, साक्ष्यों में तथा कल्पनाओं में भी स्थित रहती है, अतएव उत्तमा है। स्थितिप्रधान होने से विष्णु पोषक हैं। तत् संज्ञा से उनका बोध होता है। सबों का अधिष्ठान होने से वह सभी अवस्थाओं में व्याप्त है, अतः विष्णु है। काल सबसे ऊपर है। तृण से ब्रह्मा

पर्यन्त सब कुछ काल के वश में है। उसी दृश्य के स्वामी काल में यह जगत् स्थित एवं क्रियाशील है। काल सबों का मूल है। उसमें ही साक्ष्य एवं दृश्य वर्ग आदि निवास करते हैं। उसी से उत्पन्न होते हैं एवं उसमें ही लीन हो जाते हैं। सबों का मूल होने से वह काल श्रेष्ठ है। कालशक्ति स्वयं ही परिणाम को जन्म देती है। सभी अवस्थाओं को भी जन्म देती है। जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति की अवस्था में, विश्व, तैजस एवं प्राज्ञ की चेतनावस्था में, भूत, वर्तमान एवं भविष्य में कर्म के परिणाम को देती है।

एक ही शक्ति अलग अलग स्थिति एवं घटना के भेद से अलग अलग रूपों में प्रतिभासित होती है किन्तु अपनी एकता, अखण्डता का परित्याग नहीं करती। अतएव एकता के भङ्ग न होने से सभी रूप आपस में अविरुद्ध होते हैं। विशेष प्रकार से सोचकर पदार्थ आदि के निर्णय में लगने वाला ज्ञान विचार है। उस शक्ति का बोध विचार से ही होता है। अलग अलग क्रिया एवं भावों में नानात्व की बुद्धि होने से भ्रम की आशंका रहती है। अतएव उसे विचार के माध्यम से ही जाना जाता है। वह कालशक्ति कैसी प्रतीत होती है ? पहले तो इन्द्रियजन्य सामर्थ्य प्राप्त होता है जिससे व्यक्ति नेत्रों से दृश्य में नानात्व का दर्शन करता है। जीव अदृश्य एवं दृश्य में विचार करता है। उसके द्वारा दृश्य की स्थापना चित्त में होती है एवं भाव के अनुभव को संग्रह करता है, अदृश्य की जिज्ञासा करता है।

इस प्रकार से दृश्य एवं अदृश्य का अनुभव करता है। जीव दृष्टत्व से नेत्रों को को प्राप्त करके काल की प्रेरणा से अवस्थाओं में परिवर्तन लाता है। जागृति की अवस्था में इन्द्रियजन्य बाह्यदृश्यों को, अपने से भिन्न देखता है। स्वप्नकाल में स्वयं ही दृश्य तथा स्वयं ही द्रष्टा बन जाता है। सुषुप्ति अथवा समाधि की अवस्था में बीजरूप से दृश्य एवं अदृश्य को धारण करता है। भूत, वर्तमान एवं भविष्य, इन तीन अवस्थाओं में, विश्व, तैजस, प्राज्ञ एवं अव्यक्त, इन चार अवस्थाओं में तथा सृष्टि, विकास, चरम, ह्रास एवं विनाश, इन पांच अवस्थाओं में जो कुछ भी प्रतीत होता है, वह ब्रह्म से भिन्न है। अविनाभाव का अर्थ अभिन्न है। आधे क्षण के लिये भी दृश्यवर्ग से कालशक्ति भिन्न नहीं होती।

वह सम्पूर्ण दृश्य जगत् को देखती है। अपने ही बनाये गये भाव एवं दृश्य को देखती है। उसकी यह अनुभूति नित्य है। उसकी प्रतीति दो प्रकार से होती है। एक तो अभिन्ना होकर सञ्चालिका है एवं दूसरी भिन्ना होकर उसका अनुभव करती है। जब भिन्ना होती है तब चेतनरूप से लीला करती है एवं जब अभिन्ना होती है तब दृश्य बनकर उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार का कर्म करती है। इस प्रकार से भिन्ना एवं अभिन्ना होती है। (मुझ) निग्रहाचार्य ने श्रीसूक्त के शङ्करभाष्य में भिन्ना, अभिन्ना, कभी कभी भिन्ना,

आदि भावों से वर्णन किया है। स्वयं ही तत्त्वतः न दृश्यरूप है और न ही जड है। अतथा कहा गया। तथारूप से भासित नहीं होती है। दृश्य एवं अदृश्य तत्त्वों में जो निरुपाधित्तत्व है, वह तो तथारूप है किन्तु शक्ति अतथा है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं - यहाँ इसका स्वरूप वैसा प्राप्त नहीं होता, जैसा कहा जाता है। शक्ति चेतन से अभिन्न है। जैसे सूर्य एवं उसका प्रकाश, जैसे बर्फ एवं उसकी शीतलता। सूर्यपिण्ड तो जड होता है किन्तु प्रभा के माध्यम से वह प्रकाशरूपी हो जाता है। शक्ति ही क्रियागति में निमित्त है।

इच्छा का अर्थ कामनानुसार स्वरूप को धारण करना है। वृत्ति का अर्थ जीवसमूहों का पोषण करना है। देवीभागवत में इन्हें वृत्तिदा कहा गया है। वृत्तिरूप से ज्ञान की उपाधि धारण करती है एवं ज्ञानरूप से क्रिया की उपाधि धारण करती है। इच्छा, ज्ञान एवं क्रियाशक्ति जिस (मूलप्रकृति) के भावसाधक हैं, ऐसा ब्रह्माजी का वचन सीतोपनिषत् में है। इच्छा, ज्ञान एवं क्रियाशक्ति को न सत् के रूप में और न ही असत् के रूप में वर्णित किया जा सकता है। भिन्नभाव में इच्छा होती है, अभिन्नभाव में नहीं होती है। अभिन्नभाव में इच्छा का अभाव होता है। इच्छा के अभाव में क्रिया का अभाव होता है। क्रिया के अभाव में ज्ञान का अभाव होता है। इस प्रकार से इच्छा, ज्ञान एवं क्रियाशक्ति के संचार हेतु भिन्नता के अर्थ में संवेदना

का होना आवश्यक है। सत् एवं असत्, दोनों रूपों में उसकी प्रतीति होती है। दृश्य जगत् में असत्ता एवं सत्ता की प्रतीति भी उसके ही कारण होती है। स्मृति में, कल्पना में, इन्द्रियजन्य विषयों के अनुभव में भी जो सद्वेदना है, उसमें भी वही निमित्त है। असद्वेदना के साथ ही ऐसी ही बात समझनी चाहिये। तत् एवं अहं पद की किस अधिष्ठान में प्रतीति होती है।

अधिष्ठानरूप अहंकार भ्रान्ति के कारण भिन्न के समान प्रतीत होता है। इच्छा, ज्ञान एवं क्रियाशक्ति में त्वं पद तथा तत्पद की प्रतीति की अवस्थिति है। शक्ति ही वृत्तिरूप से उस भ्रान्ति का अधिष्ठान है। जैसा सत् का स्वरूप प्रतीत होता है, वैसा ही उसे सद्रूप शास्त्र मानते हैं। वह सत् शक्ति में प्रतीत होता है। उसके अभाव में सब कुछ जड प्रतीत होता है। उसकी संवित् (चैतन्य)/अवस्था शक्ति का ही रूप है। अन्तकाल में सब कुछ उस शक्ति में ही विलीन हो जाता है।

आकाश आदि तत्त्व, शब्द आदि तन्मात्रा, नेत्र आदि इन्द्रिय, सब कुछ शक्ति में ही विलीन हो जाते हैं। शास्त्र को जानने वाले लोग उसे एकदेशीय कहते हैं। उसे व्यापक न मानकर अंशरूप मानते हैं, यह भ्रम के ही कारण है। जन्तुओं के जीवन में तारतम्यता होती है। श्रेष्ठ एवं कनिष्ठ, बलशाली एवं निर्बल, विशाल एवं छोटा, जल में विचरण करने वाले, आकाश में

विचरण करने वाले, पृथ्वी के ऊपर विचरण करने वाले। शक्ति के प्रभाव से यह सब भेद दिखते हैं। सभी जन्तु जन्म एवं मरण के चक्र में निमग्न हैं। केवल जीवन के मध्यभाग में ही उनकी तारतम्यता दिखती है। "सभी प्राणी पहले अव्यक्त रहते हैं। बीच में व्यक्त होते हैं एवं निधन के अनन्तर पुनः अव्यक्त हो जाते हैं, इसमें किसी चिन्ता करना ?" ऐसी उक्ति पुराणों तथा श्रीमद्भगवद्गीता में है।

एक बार नहीं, अपितु देहधारी जीव बार बार जन्म लेता है एवं मरता है। देहपरिवर्तन के निमित्त जन्म-मरण के चक्र में सभी बन्धे हुए हैं। संसृति का जन्म एवं मरण का चक्र कब जंतुओं के लिये चलेगा ? जब तक संसार है, तब तक चलेगा। जीने की इच्छा ही संसृति की कामना है। "मैं होऊँ", यह भावना ही संसार है और तब तक ही जन्म एवं मृत्यु का चक्र भी है। किस प्रकार से सृजन होता है ?

जैसे कोई मकड़ी अपने नाभिमण्डल से अपने ही अंशीभूत धागों को बाहर निकाल कर अपने भक्ष्य कीटों के लिए पाश का निर्माण करती है अथवा जैसे रेशम का कीड़ा अपने अंगों को अपने ही अंशीभूत धागों से बांध लेता है, वैसे ही शक्ति भी अपने अंश से मकड़ी की भांति संसार की रचना करती है, यह अर्थ है। कैसे ऊर्णनाभि के समान है ? पहले किये गये कर्म से

जन्य सूक्ष्म संस्कार से परिणामस्वरूप देह के स्वभावानुसार नये नये देहों को चुनते हुए नानाविध अनन्त क्रियाकलापों में संलग्न होता है। प्रकृति की सिद्धि ही ब्रह्म की सिद्धि है क्योंकि प्रकृति एवं पुरुष, दोनों को अनादि जानो ऐसा श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं। ब्रह्म तद्रूप है, जीव त्वंरूप है। तद्रूप साध्य ब्रह्म त्वंरूप साधक जीव के द्वारा सिद्ध किया जाता है। शिव एवं शक्ति में अभेद है। देव्यथर्वशीर्ष में कहती हैं - "मैं ब्रह्मस्वरूपिणी हूँ।"

दूध एवं उसकी उज्ज्वलता, सूर्य एवं उसकी प्रभा, हिमखण्ड एवं उसकी शीतलता के समान शिवशक्त्यात्मक अभेद समझना चाहिये। चैतन्य ब्रह्म अक्रिय होता है। अभिन्न गति के द्वारा शक्तिसंयोग से इच्छा उत्पन्न होती है। तत् संज्ञा वाला वह ब्रह्म त्वं संज्ञा वाले जीव के रूप में अपनी क्रियाशीलता के कारण प्रतिभासित होने लगता है। वह ब्रह्म चैतन्यरूपी प्रमाण है। शक्ति प्रमाता है। भोगने वाला चेतन प्रमाण है तथा दृश्य प्रकृति प्रमेय है। अलग अलग देहों में नाना संस्कारों की प्रवृत्ति के कारण चैतन्यभेद प्रतीत होता है। प्राचीन (ब्रह्म) पद को ग्रहण करके अनादि होने से संसार में प्रवृत्ति होती है। प्रज्ञाशक्ति के कारण बुद्ध चेतन अव्यय एवं उपाधिरहित होता है। जिस स्थान पर प्रवृत्ति का प्रसार होता है, वह शक्ति है। तत् पद में बुद्धि के निवृत्त होने पर त्वम् उपाधि भी निवृत्त हो जाती है।

समय समय पर काल, नाम एवं रूपमय हो जाने वाला जगत् बुद्धि का स्वरूप है। यह विश्व एवं सृष्टि धरादि पञ्चभूतों में व्यवस्थित हैं। पञ्चभूत एवं उनसे निर्मित भौतिकादि रूपों में भासमान चेतन प्रकृति के साथ ज्ञाता एवं ज्ञेय रूप से भासित होता है। जैसे कमल का पत्ता (जल में रहता हुआ भी) जल से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार से शक्ति ज्ञेय ब्रह्म में रहती हुई भी उससे लिप्त नहीं होती है। असत् रूपी संसार मे होते हुए भी शक्ति की सत्ता का निस्तरण नहीं होता, वह अबाधित ही रहती है।

जैसे पुष्प में गन्ध होता है किन्तु वह गन्धतत्त्व स्थूल पुष्प से लिप्त नहीं होता है। स्थूल पुष्प गन्धतत्त्व को बाधित करवाने में समर्थ नहीं होता किन्तु सर्वतः उससे लिप्त होता है वैसे ही जीवत्त्व की स्थिति में चैतन्य मुक्त होता हुआ भी अहंकार के कारण उपाधि से बद्ध होता है। यह जडचेतनमय संसार शक्ति की प्रेरणा बद्ध और मुक्त उपाधि से युक्त होता हुआ उसका विलासमात्र ही है। शक्ति के सन्निधान से तत् उपाधि में स्रष्टृत्व का दर्शन होता है। तत् दृश्य चैतन्य स्वरूप में भासित होता है। लिंगान्तर में शक्ति एकता का प्रदर्शन करती है फिर भी स्वरूप की दृष्टि से उपाधि रहित होने से उसमें दोष नहीं गिना जाता है। शक्ति ही चेतन के साथ जुड़कर बन्धमुक्त होकर मुक्ति का अनुभव करती है।

चूंकि शक्ति का कोई आदि नहीं अतएव पुरानी होकर ही प्राचीन काल से नये नये स्वरूपों को धारण करती रहती है। स्वभावतः मुक्त होने पर भी आत्मा स्वयं अपने आत्मरूप से स्वयं को भ्रान्तिवश बद्ध के समान मानती है। उसके इस भ्रम का नाश शक्ति की कृपा से ही होता है। शक्ति से विरोध होने पर वह आत्मरूप को भूलकर अन्धकारमय संसार में, जन्म मरण के चक्र में गिरता है। चौबीस तत्त्वों के भोग की लालसा से उपाधियुक्त होकर इस मिथ्या जगत् में चेतन के द्वारा भ्रमण किया जाता है। जन्म-मरण के चक्र में मन की कल्पना के द्वारा अन्न-जल आदि की इच्छा रखता हुआ जीव बारम्बार घूमता हुआ स्वर्ग से नीचे गिरता है। जैसे ब्रह्म अपने आप में ही स्वतन्त्र एवं निरपेक्ष है, वैसे ही शक्ति भी है।

ब्रह्म के निर्गुण एवं सगुण अवतार शक्ति (के योजन एवं वियोजन) से ही प्रकट होते ही हैं। शक्ति स्वयं निर्विकार होकर कर्त्रीरूप से क्रियाभाव को प्राप्त करती है। जीव की ही आत्मशक्ति से जीव में बन्ध एवं मोक्ष की कल्पना की गयी है। केवल ज्ञेय ही नहीं, अपितु ज्ञाता भी चिन्त्य है क्योंकि दोनों में भेद नहीं है। जड़ता की स्थिति में शक्ति प्रभावहीना रहती है। चैतन्यता की स्थिति में अष्टपाश के माध्यम से बन्धनकारिणी होती है। अपने आप को न जानकर पद के माध्यम से "मैं बन्धा

हुआ हूँ", ऐसा चिन्तन ही विष का ग्रहण है। पद शब्द से क्षरपद, जिसे देह कहते हैं, उसका ग्रहण होता है। माया एवं ब्रह्म, चेतन एवं शक्ति, पुरुष एवं प्रकृति में साम्यता होने से, दोनों के अनादि होने से दोनों योग के योग्य हैं। विलासावस्था में भेद का दर्शन होने से प्रवृत्ति का न्यास ही द्वैत कहलाता है। योग कैसा है ? कर्मफल प्रदान करने से, उपासना की शक्ति से युक्त योग होता है। अतएव तत् में जैसे योग एवं यज्ञ हैं, वैसे ही भोग भी ईश्वर के अंशीभूत जीव का, उपाधि के कारण होता है।

स्वातन्त्र्य से शक्ति भोक्तृत्व उपाधि से भोगकर्म में युक्त होकर भी अलिप्त रहती है। निर्गुण रूप से व्याप्यत्व, दोनों (निर्गुण एवं सगुण) के माध्यम से नित्यत्व एवं सगुण रूप से बन्धस्वरूपत्व में इन तीनों धर्मों वाली शक्ति अपनी सत्ता में स्वतन्त्र रहती हैं। जिनके द्वारा यह कहा जाता है कि माया "नहीं है", वह केवल भ्रम है क्योंकि (यदि माया नहीं है) फिर क्रियारहित ब्रह्म में किस हेतु से बिना शक्ति के ही चिन्तन कैसे सम्भव हुआ ? जिनके द्वारा कहा जाता है कि माया "है", वह भी उपयुक्त नहीं है क्योंकि "है", यह चेतन ब्रह्म का विषय है। "नहीं है", एवं "है", इन दोनों का शक्ति अधिष्ठान (आधार) है, वाच्या नहीं है। प्रकृति का परिणाम जगत् नहीं है, क्योंकि जगत् तो मिथ्या है।

कार्य एवं कारण में बाध हो जाने से कैसे प्रकृति में मिथ्यात्व हो सकता है ? इस प्रकार से पक्ष एवं विपक्ष, दोनों से यह असिद्ध हो जाता है कि शक्ति है अथवा नहीं। उसका भाव एवं अभाव जब अनुभूत होता है तो ब्रह्म के अक्रिय होने से शक्ति ही कर्त्री है, ऐसा बोध होता है। जिस निर्देश से पहचान हो सके, उसे लिङ्ग कहते हैं। देश, काल, वस्तु आदि में अनिर्दिष्ट होने से ब्रह्म लिङ्गरहित है। उसका लिङ्ग (लक्षण) मात्र तत् (शिवस्वरूप) ही है। जिसकी प्राबल्यता से ब्रह्म आत्मलिङ्गता को स्वयं ही प्राप्त कर लेता है, वह शक्ति है, जिसके कर्त्रीभाव से तत् में सलिङ्ग एवं अलिङ्ग भाव उत्पन्न होते हैं।

उस ज्ञानस्वरूपी तत् के वशीकरण के निमित्त तत् की कामिनी होकर अथवा अपनी मोहिनी होने की प्रवृत्ति के कारण इच्छामयी शक्ति काम का प्रकाशन करती है। जैसे सन्तान के जन्म के हेतुभूत माता एवं पिता होते हैं, वैसे ही सृष्टि के हेतुभूत शक्ति एवं ब्रह्म होते हैं। द्वैत के कारण भेदभावना के भ्रम से ही सृष्टि होती है, भ्रम के नाश हो जाने पर अकर्तृत्व आ जाता है। शक्ति इन्द्रजाल के समान इस जगत् को जन्म नहीं देती है, जैसे रस्सी सर्प को जन्म नहीं देती है। अन्तःशक्ति की प्रेरणा से जगत् अविद्या के माध्यम से प्रतिभासित होता है। तत् के निर्गुण होने के कारण उससे भी यह जगत् उत्पन्न नहीं हुआ है। त्वम् भी निर्गुण ही है किन्तु तत् (ब्रह्म) अक्रिय है तथा त्वम् (जीव)

सक्रिय है। अतएव यहां जगत् शक्ति का परिणाम नहीं हैं क्योंकि इसमें (अविद्योपाधि होने से) ब्रह्म का उपादान नहीं है, यह तो इन्द्रजाल के समान मिथ्या है। ब्रह्मसूत्रकार वेदव्यास कहते हैं कि संसार कामनारूपिणी द्वैतदृष्टि से उत्पन्न होता है क्योंकि अभिन्न (अद्वैतदृष्टि) में तो कामना ही उत्पन्न नहीं होगी।

तत् शक्ति से परे है, ऐसा जैमिनि का वचन है। हयग्रीव कहते हैं कि शक्ति तत् से भिन्न नहीं है एवं उनके इस मत का समर्थन सूत्रकार ऋषि अगस्त्य करते हैं। पैप्पलायन कहते हैं कि ब्रह्म को जानने वाली ज्ञानमयी वह शक्ति संवित् और चित्स्वरूपिणी है। कठश्रुतियों के द्रष्टा ऋषि कहते हैं कि जब शक्ति शब्द कहा जाता है तो वहां प्रधानता से कर्तृत्वशक्ति का अर्थ है। पराशर का कथन है कि इच्छा, ज्ञान एवं क्रियाशक्ति में शक्ति की प्रबलता दिखती है। वशिष्ठ ऋषि एवं संसार को बनाने वाले परमेष्ठी ब्रह्मा जी का कहना है कि शक्ति मोहबल से द्वैत की रचना करते हुए संसार की रचना का निमित्त बनती है। शुकदेव जी मानते हैं कि आत्मतत्त्व एवं शक्ति में अभेद है।

वह संसार की जननी है, ऐसा नारद जी मातृभाव से मानते हैं। चौदह मनु मानते हैं कि शक्ति के माध्यम से ही संसार चक्र से उद्धार होता है। शास्त्रों में इन पहले कहे गये लक्षणों के प्रमाण उपलब्ध हैं। तत् ही शक्ति है, ऐसा तित्तिरि मुनि अद्वैतदृष्टि से

कहते हैं तथा वेद को जानने वाले भी ऐसा ही कहते हैं। कश्यप ऋषि शब्दमय ब्रह्म का समर्थन करते हैं। चेतन की विश्व, तैजस एवं प्राज्ञावस्था में जो जागृत, स्वप्न तथा सुषुप्ति की अवस्था में प्रकट होती है, वह शक्ति है, ऐसा भगवान् शिव कहते हैं। प्रलय के समय जिस (पुरुष अथवा प्रकृति) में सब कुछ लीन हो जाता है, सबों का अन्त करने वाली वही शक्ति है, ऐसा भगवान् विष्णु कहते हैं। देवगुरु बृहस्पति कहते हैं कि शक्ति ब्रह्म से बाहर होकर विलास करती है।

भेददृष्टि अथवा द्वैतदृष्टि में कालरूपी ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता है। उस तत् संज्ञक कालब्रह्म के वर्षयुगादि अवयव संसार का सञ्चालन करते हैं। सूक्ष्मतम दहरसंज्ञक आत्माकाश में जो सुषुम्नारूप से व्याप्त होती है एवं ब्रह्म के प्रति गमन करती है, वह शक्ति है, ऐसा आरुणि के अनुयायी कहते हैं क्योंकि श्रुतिगीता में कहते हैं कि आरुणि के अनुयायी दहरब्रह्म के उपासक होते हैं, इस प्रकार से ब्रह्माण्ड को शक्ति किसी पिण्ड के समान अन्दर एवं बाहर से व्याप्त करती है।

जब शक्ति ब्रह्मपरायणा होती है तब तत् से बाहर निकल कर प्रेम से तत् के प्रति गमन करती है, इस प्रकार की गतिविधि से जगत् द्वैतबुद्धि से जन्म लेता है, ऐसा ब्रह्मवेत्ता जन कहते हैं। धारणा से धर्म है, उसका परित्याग अधर्म है, उसी से बन्धन

होता है। कौलमत की श्रुतियों के द्वारा कहा जाता है कि 'अ' ब्रह्म है इसीलिए धर्म 'अ'धर्म है, ऐसी लाक्षणिकसिद्धि है और वही बन्धन है। धर्म में ब्रह्म की धारणा करने से जो निवृत्ति मिलती है, वह मोक्ष है। मोहकाल में भी जिसका विनाश नहीं होता है, वह शक्ति है अतएव चित्त के प्रमाद से लुप्तरूप वाली होती है एवं रूपवानों के प्रति क्रियाभाव को धारण करती है, ऐसा मौद्गलायनि एवं माठरायण कहते हैं। ज्ञानस्वरूपिणी शक्ति ब्रह्म के अतिरिक्त किसी अन्य को नहीं जानती है, उससे युक्त जीव भी ऐसा ही करता है। वेदज्ञान से जीव प्रकृति को जानता है एवं अपना संसार समुद्र से अपना उद्धार करता है। ब्रह्म को जानकर, ब्रह्म में स्थित जीव ब्रह्म होकर ब्रह्म के साथ ही रमण करता है, ऐसा अर्थ है।

|| इति श्रीनिग्रहाचार्यकृते सृष्टिभाष्ये प्रथमोऽध्यायः ||

॥अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

विदित्वैवं तरति ॥०१॥ य आत्मवित् ॥०२॥
जैमिनिरनात्मेति ॥०३॥ गौणी चेन्न प्राचुर्यात् ॥
०४॥ तदभावेऽपि तस्मिन्नेषा प्रलये लीयते इति
ब्रह्मविदः ॥०५॥ अवशेषात्स विशिष्यते इति चेन्ना
विशेषात् ॥०६॥अविद्याक्षयेन ब्रह्माभिधेयम् ॥
०७॥ अप्यन्यत्र सिद्धेः ॥०८॥ आकाशशरीरित्वात्
॥०९॥ आकाश एव चेन्नानन्दः स्यात् ॥१०॥
तस्या एव विभूतेस्तादृत्त्वात् ॥११॥ नैवंवित्तु
तूलवदग्नेः ॥१२॥ भिन्नलिङ्गत्वाद्भेदव्यपदेशः ॥
१३॥ अनवगम्यत्वात् ॥१४॥
प्रागाहार्यप्राक्कल्प्यप्राक्कर्म्यप्राकट्यादिभिः
व्यञ्जितमभिव्यक्तम् ॥१५॥ अपि च स्मर्यते ॥१६॥
आनन्दायान्तर्दृष्टिः ॥१७॥ बहिर्लक्ष्यम् ॥१८॥ एवं
गुणानुषङ्गः ॥१९॥ अन्यदनन्तं गुह्यञ्च ॥२०॥
तद्गुरोर्गम्यते ॥२१॥ तत्कृत्स्नादुपसंहारः ॥२२॥

साक्षित्वे लौकिकं विरुद्धम् ॥२३॥ श्रिया भिन्नत्वात्
॥२४॥ नैव किञ्चन ॥२५॥ सर्वत्वात् ॥२६॥
नन्वागमः ॥२७॥ प्राकृतत्वात् ॥२८॥
मौनवदुपदेशः ॥२९॥ द्विस्त्रिश्चतुर्भिः पञ्चीकरणम् ॥
३०॥ नियमादयो हि शुद्धेः ॥३१॥ प्राणात्ययेऽपि
॥३२॥ नैव मरणं ॥३३॥ जीवन्मुक्तेः ॥३४॥
यदेवं तत्र तत्रोक्तम् ॥३५॥ यां विना न गतिर्गम्यते
॥३६॥ यल्लेपान्मुह्यन्ति ॥३७॥
यत्प्रसादाज्जीवन्मुक्तो जीवः परं ब्रह्मैव भवति ॥
३८॥ यस्मान्न पुनर्भवः ॥३९॥ नित्यानन्दात्मकत्वात्
॥४०॥ निर्विकारः सर्वभूतचैतन्यतामेति ॥४१॥
नित्यमुक्तः पूर्णो भवति ॥४२॥ निरालम्बत्वात् ॥
४३॥ तद्भेदान्यतयाऽबाधितत्वात् ॥४४॥
तत्तत्प्रकरणम् ॥४५॥ विभिन्नप्रमेयत्वात् ॥४६॥
विद्याश्चाविद्याश्च प्रत्यक्षाद्यैरुपलभ्यन्ते ॥४७॥
विलक्षणा हि प्रकृतिः ॥४८॥ पुरुषवत् ॥४९॥
श्रुत्यगोचरत्वात् ॥५०॥ तन्मुक्तौ वैलक्षण्यं

नावैलक्षण्यं तत्क्षणे ॥५१॥ श्रुतिस्मृतिपुराणेभ्यः ॥
५२॥ आनन्दतारतम्यं च कोशाभिमानात् ॥५३॥
भिन्नवद्व्यपदेशः ॥५४॥ निस्संशयः सिद्धान्तः ॥
५५॥ सर्वदुःखोपरमः श्रेयान् मोक्षः ॥५६॥
तत्सर्वं प्रकृतेरविद्याविलासात् ॥५७॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृतं सृष्टिभाष्यम्

शक्तिज्ञानेन ब्रह्मबोधो भवति तद्बोधेन निवृत्तिर्मोक्षो य आत्मवित्स ब्रह्मवित्स तत्त्ववित्सैव तरति। अनात्मेति जैमिनिरत्रार्थौ नास्त्यस्तीति। कर्मपारतन्त्र्येण नास्तीत्यस्तीत्यात्मस्वातन्त्र्येण। कर्ता मुख्यः शक्तिर्गौणी सूक्ष्मत्वात्। ये मन्यन्ते ब्रह्म जगतोऽभिन्ननिमित्तोपादानकारकं ते ब्रह्मवादिनो विलयवादिनः। शेषीभूतेऽविशेषानुपाधिना। जीवेश्वरौ भिन्नभेदाविति प्राथमिको भ्रम इत्यन्नपूर्णोपनिषदि। भेददृष्टिरविद्या। तस्या नाशेन ब्रह्मबोध

एवमन्यशास्त्रेष्वपि सिद्धम्। तन्मिलित्वाहंरूपिणी
भवत्यविद्यया भिन्ना विद्ययाभिन्नास्मिताकलया
युक्तश्चैतन्यं सकलं स्मृतम्। अस्मितारहितं चेतश्चैतन्यं
शक्तिरुच्यत इति देवीकालोत्तरागमे।
आकाशदेहवद्ब्रह्मानन्तमानाविकारवदिति निग्रहागमे।
यया प्रकाश्यते ब्रह्म सा त्वं नित्या प्रसीद मे।
विश्वादिस्त्वमनादिस्त्वं विश्वयोनिरयोनिजेति
परलगन्धर्वतन्त्रे तस्मादाकाशवद्ब्रह्म शक्तेः सहायतया
क्रियादेहवद्भवत्यानन्दाकाशतुल्यं यस्मात्तस्माद्वा
एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत इति तैत्तरीयोपनिषदि
ब्रह्मवल्ल्याम्। यथा बीजस्य तेजांशो वृक्षस्तथा व्योम
ब्रह्मणस्तेजांशेन निर्मितम्। अभिन्नं भिन्नसंस्थानं शाश्वतं
ध्रुवमव्ययम् । निर्गुणं परमं व्योम तज्ज्ञानं सूरयो
विदुरिति कूर्मपुराण उत्तरभागे। नाग्नेर्दाहकता
नेत्रेन्द्रियविषयोऽपितु त्वक्स्पर्शविषयः। व्योम द्रव्यमिति
नैयायिकाः। शक्तेराकाशस्य भिन्ननिर्देशलिङ्गत्वान्न शक्तिः
पदार्थो यस्मादनुमानत्वादाकाशो गम्यः किन्तु
शक्तिरनवगम्येति सूत्रकारोऽगस्त्योऽत

एवोच्यतेऽज्ञेयानन्तालक्ष्याजैकानैकेतीति देव्यथर्वश्रुतिः।
शक्तिरनवगम्याकाशपूर्वा
तस्मात्प्रागाहार्यप्राक्कल्प्यप्राक्कर्म्यप्राकट्यमपि तस्या एव।
चलच्चित्ते वसेच्छक्तिः स्थिरचित्ते वसेच्छिवः। स्थिरचित्ते
भवेद्देवी स देहस्थोऽपि सिद्ध्यतीति ज्ञानसंकलिनीतन्त्रे।
पूर्वस्मृतियुक्ता पदार्थस्मरणं कारयत्यानन्दरूपिणी
जीवेष्वानन्देनान्तर्दृष्टिर्भूत्वा व्याप्नोति बहिर्लक्ष्यभूतैवं
त्रिगुणेष्वसङ्गा भवति। अन्यद्ब्रह्मानन्तं गुह्यं भवति।
अनन्तं सत्यमीशानमिति कूर्मपुराण उत्तरभागे। गुह्यं ब्रह्म
सनातनमिति कठोपनिषदि। गूढा विद्या जगन्माया देहे
चाज्ञानसम्भवा। उदयो यत्प्रकाशेन गुरुशब्देन कथ्यत
इति लघुगुरुगीतायां तस्माद्गुह्या शक्तिर्गुरुणा गम्या
भवति। तज्ज्ञानेन विद्ययोपसंहारः।
प्रदर्शनादिलौकिकप्रमाणैः केचन मन्यन्ते शक्तौ साक्षित्तं
तत्तु नोपयुक्तम्। शक्त्याधिष्ठित आत्मा
साक्षीरूपेणानुभूयते। ऐश्वर्यबुद्ध्या शक्तिरात्मनो भिन्ना।
किं शक्तिः ? न किञ्चिद्यस्माज्ज्ञाताज्ञेयज्ञानं ब्रह्म।
तेषामधिष्ठानं शक्तिराख्यातितासदसदित्यनुभूयते

ज्ञेयध्यानादिसर्वेषु स्थितेति आगमप्रामाण्यम्।
आगमप्रमाणिता निगमसम्मता शक्तिर्ब्रह्मणि कीदृशी
प्रतिष्ठिता ? प्रकृतिरूपेण। गुरोस्तु मौनं व्याख्यानमथवा
मौनव्याख्याप्रकटितपरब्रह्मतत्त्वमिति दक्षिणामूर्त्यष्टके
श्रीशङ्कराचार्यः। साधकस्तत्त्वं गुरुशिष्यौ तत्त्वे
गुरुशिष्यवाक्यानि तत्त्वानि।
गुरुशिष्यवाक्येष्टचतुस्तत्त्वानि।
इष्टशक्तिगुरुशिष्यसाधनेति पञ्चतत्त्वानि। तेषामेकीकरणं
योगः। नियमादिभिर्योगः शुद्ध्यति। नियमं प्रथमं कृत्वा
पश्चात्पूजां समाचरेदिति देवीभागवते। प्राणानां
नियमनमन्तकालगतावप्यत्र नोपयुक्तं मरणं
यस्माच्छरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनमिति कुमारसम्भवे। या
मुक्तिः पिण्डपातेन सा मुक्तिः शुनिशूकरे पिण्डपातनं न
जीवन्मुक्तिरिति भावः। जीव इति यः सः सर्वभूतेष्वपि
शिवत्वेनैव व्यवस्थितः शिव एव तज्ज्ञानी जीवन्मुक्तो
यथा रविः सर्वं जगद्भासते एवं ब्रह्म सर्वभूतानामात्मत्वेन
संस्थितं सदखिलं भासते प्रकाश्यति। एवमेव
पश्यन्नित्यनुवर्तते स तादृशो ज्ञानी जीवन्मुक्त इत्युच्यत

इत्यर्थः। पद्मपत्रमिवाम्भसा तिष्ठति संसारे। शक्त्या विना परमगतिरलभ्यते। मलविक्षेपावरणादयो लेपा जीवं मुह्यन्ति। शक्तेः प्रसादाज्जीवो जीवन्मुक्तो भूत्वा ब्रह्मैव भवति न तस्मात्पुनर्भवो भवति नित्यानन्दरूपी भवति। विकाररहितो भूत्वा जीवः सर्वभूतेषु चैतन्यतां समदृष्टिमनुभवति। पूर्णमेवावशिष्यत इति श्रुतिः स्वभावतो मुक्तो भवति। आलम्बनाकाङ्क्षी भवत्यक्रियः। शक्तिः स्वयंकर्त्री चिद्रूपिणी निरालम्बा। एवमुपाधिरूपतया ब्रह्म शक्त्या भिन्नं प्रतीयते किन्तु भेदबाधत्वादभिन्नः। तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीं तां होवाचेति केनोपनिषदि तस्मात्साद्वितीयौङ्कारस्वरूपिणी। प्रमाणं प्रमाता वा ? प्रमाणं प्रत्यक्षानुभूतिज्ञानमिति तस्मात्प्रमेयमपि प्रमाया अंशः। शक्तिर्यदानुभूयते तदाविद्याविद्येति। प्रकृष्टं कृतिं करोति सा प्रकृतिस्तस्मात्सा विलक्षणा पुरुषवदनादिः। श्रुतौ न दृश्यते प्रकृतेर्गोचरता। प्रकृतिहीनो जीवोऽशक्त इति श्रुतिभिः स्मृतिभिः पुराणेभ्यः कथ्यते। अन्नप्राणमनोविज्ञानानन्दमयकोशैर्विषयासक्तेन

ज्ञानिनस्तारतम्यता ज्ञायते। ममास्तीति
भिन्नरूपत्वाद्व्यपदेशः। संशयसंक्षयेण सिद्ध्यते
सिद्धान्तः। पुंसां सर्वक्लेशमोचनं मोक्षः। तत्सर्वं
संसारसंसृतिः प्रकृतेरविद्याशक्तेः परिणामः।

हेमलता भाषानुवाद

शक्ति के ज्ञान से ब्रह्मबोध होता है। तत् के बोध से जो निवृत्ति होती है, वह मोक्ष है। जो आत्मा को जानता है, वही ब्रह्म को जानता है, वही तत्त्व को जानता है, वही पार उतरता है। ऋषि जैमिनि "अनात्मा", ऐसा कहते हैं। यहाँ आस्तिक एवं नास्तिक मत से दो अर्थ हैं। कर्म की परतन्त्रता से "नहीं है", एवं आत्मा की स्वतन्त्रता से "है", ऐसा अर्थ है। कर्ता मुख्य होता है क्योंकि (उसमें व्याप्त होने से) शक्ति अधिक सूक्ष्म है फलतः गौण है। जो मानते हैं कि ब्रह्म जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है, वे ब्रह्मवादी यह भी मानते हैं कि अन्त में शक्ति का विलय ब्रह्म में हो जाता है और शक्ति ब्रह्म से निरुपाधि होने के कारण अविशेष हो जाती है। अन्नपूर्णोपनिषत् में कहते हैं कि जीव एवं ईश्वर भिन्न हैं, यह प्राथमिक भ्रम है। दोनों में भेददृष्टि रखना ही अविद्या है। उसके नाश के कारण ब्रह्मबोध होता है, ऐसा अन्य शास्त्रों में भी सिद्ध है।

तत् से मिलकर शक्ति अहंरूपिणी हो जाती है, अविद्या के कारण भिन्न लगती है, विद्या के कारण अभिन्न लगती है। अस्मितारूपी कला से युक्त चेतन "सकल" माना गया है एवं अस्मिता से रहित चेतन को ही शक्ति कहते हैं, ऐसा देवीकालोत्तरागम का वचन है। ब्रह्म आकाश के समान अनन्त मान वाला एवं अविकारी कलेवर वाला है, ऐसा निग्रहागमों का वचन है। परलगन्धर्वतन्त्र में कहते हैं कि जिसके द्वारा ब्रह्म प्रकाशित होता है वह नित्यस्वरूपिणी देवी मुझपर प्रसन्न हों। तुम विश्व की आदि हो, तुम्हारा कोई आदि नहीं। तुम सबों की कारणभूता हो, तुम्हारा कोई कारण नहीं, अतएव आकाश के समान ब्रह्म शक्ति की सहायता से क्रियाभाव के देह वाला होता है, जैसे आनन्दाकाश के तुल्य हो क्योंकि तैत्तरीयोपनिषत् की ब्रह्मवल्ली में कथन है कि आकाश आत्मा से सम्भूत हुआ है। जैसे वृक्ष बीज के तेजांश हैं, वैसे ही आकाश ब्रह्म के तेजांश से निर्मित हैं।

कूर्मपुराण के उत्तरभाग में कहते हैं - जो अभिन्न हैं किन्तु भिन्नरूप वाले देहों में स्थित हैं, शाश्वत-ध्रुव-अव्यय हैं। निर्गुण परमसत्ता हैं, व्योमरूपी हैं, उस तत् के ज्ञान को बुद्धिमान् जन जानते हैं। अग्नि की दाहकता आंख का नहीं, अपितु त्वचा के स्पर्श का विषय है। नैयायिक कहते हैं कि आकाश द्रव्य (पदार्थ) है। शक्ति और आकाश का निर्दिष्ट लिङ्ग भिन्न है,

अतएव शक्ति पदार्थ नहीं है क्योंकि अनुमान की दृष्टि से आकाश गम्य है किन्तु शक्ति अनवगम्या है, ऐसा सूत्रकार अगस्त्य कहते हैं। देव्यथर्वशीर्ष में कहते हैं कि शक्ति इसीलिए अज्ञेया, अनन्ता, अलक्ष्या, अजा, एका एवं नैका है। शक्ति अनवगम्या है, आकाश से पहले उसकी स्थिति है इसीलिए विषयों के आहार से पहले, कल्पना से पहले, कर्म एवं प्राकट्य से पहले भी उसकी स्थिति है। चलायमान चित्त में शक्ति का वास होता है एवं स्थिरचित्त में शिव रहते हैं।

जो स्थिरचित्त में देवी को स्थापित कर लेता है, वह शरीर में रहता हुआ भी परमसिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है, ऐसा ज्ञानसंकलिनीतन्त्र का कथन है। पूर्व की स्मृति से युक्त होकर वह चेतन को पदार्थ का स्मरण कराती है, स्वयं आनन्दरूपिणी है और आनन्दशक्ति से जीवों में अन्तर्दृष्टि बनकर व्याप्त होती है। बहिर्मुखी होकर तीनों गुणों से शक्ति असङ्गा होती है। शक्ति के अतिरिक्त जो ब्रह्म है, वह अनन्त एवं गुह्य है। कूर्मपुराण के उत्तरभाग में ब्रह्म को अनन्त, सत्य एवं ईशान कहा गया है। कठोपनिषत् में ब्रह्म को गुह्य एवं सनातन कहा गया है। लघु गुरुगीता में कहते हैं कि जो विद्या गूढ है, संसार को मोहित करने वाली माया है, देह में अज्ञान से उत्पन्न होती है और जिसके प्रकाश से उसका उदय होता है, उस तत्त्व को गुरु शब्द से बताया जाता है, अतः गुप्त शक्ति गुरुतत्त्व के द्वारा गम्या होती

है। तत् के ज्ञान से, विद्या के द्वारा (जगत् का) उपसंहार हो जाता है। प्रदर्शन आदि लौकिक प्रमाणों के द्वारा, कुछ लोग मानते हैं कि शक्ति में साक्षित्व है, किन्तु यह बात उपयुक्त नहीं। शक्ति के द्वारा अधिष्ठित आत्मा ही साक्षीरूप से अनुभवगम्य होता है। ऐश्वर्यबुद्धि से शक्ति आत्मा से भिन्न है। शक्ति क्या है ? कुछ भी नहीं, क्योंकि ज्ञाता, ज्ञेय एवं ज्ञान आदि सब कुछ ब्रह्म है। उनका अधिष्ठान शक्ति बतायी गयी है तथा सत् एवं असत् में उसका अनुभव होता है। आगम का प्रमाण है कि ज्ञेय, ध्यान आदि सभी स्थितियों में शक्ति स्थित है। आगम से प्रमाणित एवं निगम से सम्मत शक्ति ब्रह्म में किस प्रकार प्रतिष्ठित है ? प्रकृतिरूप से। गुरु का मौन ही उसका व्याख्यान है, अथवा मौन से ही परमगुरु परब्रह्म के तत्त्व को प्रकट कर देते हैं, ऐसा दक्षिणामूर्त्यष्टक में श्रीशंकराचार्य जी कहते हैं।

साधक एक तत्त्व है। गुरु एवं शिष्य दो तत्त्व हैं। गुरु, शिष्य एवं गुरुवाक्य (मन्त्र) तीन तत्त्व हैं। गुरु, शिष्य, वाक्य एवं इष्ट, यह चार तत्त्व हैं। इष्ट, शक्ति, गुरु, शिष्य एवं साधनामार्ग, यह पांच तत्त्व हैं। इन पांचों में एकीकरण की भावना योग है। नियम आदि के द्वारा योग शुद्ध होता है। देवी भागवत में कहते हैं कि पहले नियम सिद्ध करे, फिर पूजा का आचरण करे। अन्तकाल आने पर भी प्राणों का नियमन अवश्य करे। यहाँ नियमन शब्द से मृत्यु का अर्थ ग्रहण करना उचित नहीं क्योंकि कुमारसम्भवम्

में कहते हैं कि शरीर ही धर्मपालन का प्राथमिक माध्यम है। शरीर छूटने के बाद जो मुक्ति होती है, वह तो कुत्ते-सूअर आदि को भी मिल जाती है, अतएव शरीर का छूटना "जीवन्मुक्ति" नहीं है, यह भाव है। जो जीव है, वह शिवत्व से सभी प्राणियों में भी स्थित शिव ही है, उसे जानने वाला ही जीवन्मुक्त है। जैसे सूर्य सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करते हैं, वैसे ही ब्रह्म भी सभी प्राणियों में आत्मरूप से स्थित होकर सत् को सबों को भासित करते हैं, प्रकाशित करते हैं। इस प्रकार से देखता हुआ जो नित्य व्यवहार करता है, वह - उसके जैसा ज्ञानी ही जीवन्मुक्त है, ऐसा कहा जाता है, ऐसा अर्थ है। जो जीवन्मुक्त हो जाता है, वह संसार में वैसे ही (निर्लिप्त होकर) स्थित रहता है जैसे जल में कमल का पत्ता रहता है। शक्ति के बिना परम गति प्राप्त नहीं होती है क्योंकि मल, विक्षेप एवं आवरण आदि लेप जीव को मोहित करते हैं। शक्ति की कृपा से जीव जीवन्मुक्त होकर ब्रह्म ही हो जाता है, फिर उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। वह सदैव आनन्दरूपी होता है। विकारों से रहित होकर जीव सभी प्राणियों में चैतन्यता और समान दृष्टि का अनुभव करता है। "पूर्ण ही बचता है", यह वेदवाक्य है, वह स्वभावतः ही मुक्त होता है। शक्ति के आलम्बन का इच्छुक होकर वह क्रियारहित हो जाता है। शक्ति स्वयं ही स्वयं की कारणभूता, चिद्रूपिणी होकर आलम्बन की इच्छा से रहित होती

है। इस प्रकार से उपाधि के कारण ब्रह्म शक्ति से भिन्न प्रतीत होता है किन्तु भेदबुद्धि के बाधित होने से अभिन्न होता है। केनोपनिषत् में इन्द्र के द्वारा आकाशमण्डल में स्वर्णमयी आभा वाली ब्रह्मवादिनी ब्रह्मबोधिनी गौरी शक्ति के दर्शन एवं संवाद का प्रसङ्ग है, अतएव वह अद्वितीया एवं ओङ्काररूपिणी है। वह प्रमाण है अथवा प्रमाता है ? जो प्रत्यक्ष अथवा अनुभूति ज्ञान से ज्ञात हो वह प्रमाण है, अतः प्रमेय भी प्रमाता का ही अंश है। जब शक्ति का अनुभव होता है, तो विद्या एवं अविद्या, इन दो स्वरूपों में होता है। उत्तम श्रेष्ठ रचना करने से वह प्रकृति कहलाती है, अतएव वह विलक्षणा एवं पुरुष के समान अनादि है। वेदों में प्रकृति के गोचरत्व का दर्शन नहीं होता है। प्रकृति से हीन जीव अशक्त है, ऐसा श्रुति, स्मृति एवं पुराणों के द्वारा कहा जाता है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोशों के द्वारा विषयासक्त स्थिति से ज्ञानी स्थिति की तारतम्यता जानी जाती है। यह "मेरी" शक्ति है, इस प्रकार स्वयं से भिन्नरूप समझने से व्यपदेश होता है। इन संशयों के क्षीण होने से ही सिद्धान्त सिद्ध होता है। जीवविशेष का सभी (प्रधानतः पांच) क्लेशों से मुक्त होना ही मोक्ष है। यह सब संसार चक्र प्रकृति की अविद्याशक्ति का परिणाम है।

|| इति श्रीनिग्रहाचार्यकृते सृष्टिभाष्ये द्वितीयोऽध्यायः ||

॥अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

प्रकृतिर्द्विधा ॥०१॥ सा बन्ध मोक्षयोर्हेतुः ॥०२॥
धर्मान्मोक्षोऽधर्मानद्बन्धः ॥०३॥ धर्मः
प्रवृत्तिनिवृत्त्योः ॥०४॥ अधर्मोऽन्धतमसः ॥०५॥
प्रकृतिर्लीलाकैवल्यम् ॥०६॥ कैङ्कर्यमात्मवित्त्वाय ॥
०७॥ उपायनकृत्त्वात्पापनिवृत्तिः ॥०८॥
चतुःषष्ट्यङ्गसम्मतत्वात् ॥०९॥
गायत्र्या प्रतिज्ञा ॥१०॥ सावित्र्या मननम् ॥११॥
सरस्वत्या स्तवः ॥१२॥ लक्ष्म्या पूजा ॥१३॥
पार्वत्या परमार्थः ॥१४॥ तद्धि ह्रींकारे
क्षरत्वाक्षरत्वयोः योगो मुद्रा ॥१५॥ ध्यानं तर्पणम्
॥१६॥ क्षीरैर्विप्राः ॥१७॥ घृतेन क्षत्राः ॥१८॥
मधुना विशः ॥१९॥ मद्येन तदन्ये ॥२०॥ सर्वेऽपि
मुमुक्षवः ॥२१॥ प्रकृतिं प्रत्यग्ध्यात्वा पुनःपुनर्भक्त्या
क्रमेणैव विधिवदुपासते ॥२२॥ एकेन द्वाभ्यां ते
त्रिभिश्चतुर्भिर्मुक्ताः प्रकृतेर्भवेयुः ॥२३॥

कल्याणकृतो हि भवाद्भव उत्तमः ॥२४॥ तत्र केचन वामेन प्रकृतिं दक्षिणेन पुरुषं संधाय यजन्ति ॥२५॥ न तत्कर्म ॥२६॥ तुच्छत्वात्तमोयोग्यत्वात् ॥२७॥ दाक्षिण्यं श्रेयः ॥२८॥ संस्कुर्यात्तु पञ्चधा ॥२९॥ वायुदक्षिणो हि स्वतः शुद्धः ॥३०॥ दक्षिणेन दक्षिणो भवति ॥३१॥ मनो दक्षिणा ॥३२॥ मनसैव सर्वं तरति ॥३३॥ निश्चयो दक्षिणा ॥३४॥ निश्चयेन सर्वमाप्नोति ॥३५॥ भक्तिर्दक्षिणा ॥३६॥ भक्त्या भयं तरति शोकञ्च ॥३७॥ दीक्षा दक्षिणा ॥३८॥ दीक्षया कलुषान्मुच्यते ॥३९॥ पादुकास्मृतिर्दक्षिणा ॥४०॥ पादुकास्मृतेरिष्टसिद्धिर्भवति ॥४१॥ दक्षिणा ह्यन्तर्यागबहिर्यागौ ॥४२॥ तदुभयस्मात् ॥४३॥ तर्पणं दक्षिणा ॥४४॥ तेन तृप्तिमुपेष्यति ॥४५॥ जपो दक्षिणा ॥४६॥ जपाद्बन्धो नश्यति ॥४७॥ अनुसंसारादनुसृतिः ॥४८॥ अनुसन्धानाज्जन्मान्तरभङ्गः ॥४९॥

प्रारब्धगामिसञ्चितानां प्रारब्धस्यानुभवादेव नाशः ॥ ५० ॥ स हि प्रकृतेर्विलासः ॥५१॥ अहंता प्रकृतिः ॥५२॥ प्रथमं प्रकृतिं मनसा विभाव्य तामपि स्वात्मनि स्वात्मानं तस्यां मिथो विलाप्य तत एकोऽवशिष्यते ॥५३॥ मुक्तः शुद्धः पूर्णः प्रत्यगात्मैव भवति प्रत्यगात्मैव भवति ॥५४॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृतं सृष्टिभाष्यम्

प्रकृतिर्द्विधा भवति। विद्याविद्या चाविद्यापि द्विधा भवति माया च परमा तथेति बृहद्धर्मपुराणे सा जीवस्य बन्धमोक्षयोर्हेतुर्भवति। धरति लोकान्म्रियते पुण्यात्मभिरिति वा धर्मस्तद्विरोधस्त्वधर्मः। धर्मपालनाज्जीवस्य मोक्षो वैपरीत्ये बन्धो भवति। सकामकर्मणि प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निष्कामकर्मणि निवृत्तिलक्षणश्च। अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासत इतीशावास्योपनिषद्यधर्मस्तस्य प्रेरकः। प्रकृतेः

स्वाभाविकी लीला कैवल्यमिति कथ्यते। तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति छान्दोग्यश्रुतिः। बहुषु रूपेषु जीवा ब्रह्मकिङ्कराः। त्रिगुणं प्रश्रयन्ब्रह्म जीवत्वमश्नुत उपायनातन्निवृत्तिः।

चतुःषष्टिकलाभिरागमैर्भैरवयामबहुरूपमतमङ्गलचक्र - वागीशशिखाष्टाष्टकादिभिः सम्मितमस्ति। गायन्तं त्रायते यस्माद्गायत्री त्वन्ततः स्मृतेति स्मर्यते। गायनाद्गमनाद्वापि गायत्री त्रिदशार्चितेति देवीपुराणे देवीनिरुक्ताध्याये। तया मोक्षप्रतिज्ञा गृह्यते। सर्वलोकप्रसवनात्सविता स तु कीर्त्यते। यतस्तद्देवता देवी सावित्रीत्युच्यते ततः। वेदप्रसवनाच्चापि सावित्री प्रोच्यते बुधैरिति वह्न्युपपुराणे। तस्या तया वा मननेन मोक्षः। स्वराः स्वरणशीलत्वाद्देयाख्याः सप्त कीर्तिताः। अतिप्रापणदाने वा तेन देवी सरस्वतीति देवीपुराणे। तस्याश्चरित्रं स्तवः। लक्षणाख्यभावान् क्षिपति जगतो लयं प्रेरयति वा, लयमिति निर्माणं लयमिति निवासो लयमिति प्रलयं, सृष्टिस्थितिप्रलयघटनापरिवर्तनहेतुभूता तस्मादेव लक्ष्मीः। सर्वेषां स्थावरजङ्गमजीवानां साक्षीभूता

शुभाशुभदर्शिका भवति तथा च लोकपालकस्य विष्णोर्नित्यवैभवास्ति तस्माल्लक्ष्मीः। सर्वप्रमेयज्ञानानां लक्ष्यमिति लक्ष्मीः। मितिशब्दस्वरूपा मितिमानस्वरूपा लक्षणीया त्रिगुणात्मकङ्कामभावं क्षिपति प्रेरयति वा लक्ष्मीः। व्यक्ताव्यक्तसत्त्वसंस्थिता तेषां प्रेरयित्री क्षेपणी वा भवति, स्वात्मतत्त्वं क्षिपति क्षपयति, सज्जनानां वृजिनं क्षिणोति, क्षमा भूत्वापराधान् क्षमयति मन्यते मान्या भवति वा लोकान्मीयते सा लक्ष्मीरिति श्रीसूक्तस्य शङ्करभाष्ये जातवेदाधिकारस्य दिव्यवृत्तौ सिद्धयोगिनी पद्मिनी प्राह निग्रहं प्रति। तया लक्ष्म्या पूजा भवति। तिथिभेदे पर्वभेदे कल्पभेदेऽन्यभेदके। ख्यातौ तेषु च विख्याता पार्वती तेन कीर्तिता॥ महोत्सवविशेषे च पर्वन्निति सुकीर्तिता। तस्याधिदेवी या सा च पार्वती परिकीर्त्तिता॥ पर्वतस्य सुता देवी साविर्भूता च पर्वते। पर्वताधिष्ठातृदेवी पार्वती तेन कीर्त्तिता॥ इति ब्रह्मवैवर्तपुराणे प्रकृतिखण्डे। तयैव परमार्थो मोक्षः। मायाबीजन्तु तारिकेति लक्ष्मीतन्त्रे। हकारो व्योमरूपकस्तु तत्। रकारोऽग्निरूपकस्तु प्रकृतिः।

ईकारस्तु महामायेति शाक्तानन्दतरङ्गिण्यां
ब्रह्मानन्दकौलाचार्यः। नादो विश्वप्रसूरिति मन्त्ररहस्ये।
अर्धमात्रा महेश्वरीति देवीभागवते। अर्धमात्रास्थिता
नित्या यानुच्चार्या विशेषत इति मार्कण्डेयपुराणे।
द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव चेति
श्रीमद्भगवद्गीतायाम्। क्षरपुरुषादक्षरपुरुषस्य योगो मुद्रेति
कथ्यते। मुद्राविमुक्तहस्तेन क्रियते कर्म दैविकम्। यदि
तन्निष्फलं तस्मात्कर्म मुद्रान्वितश्चरेदिति तृचभास्करे। मुदं
करोति देवानां मनांसि द्रावयन्ति च। तस्मान्मुद्रा इति
ख्याता दर्शितव्या कुलेश्वरीति कुलार्णवतन्त्रे।
क्रियाशक्तिस्तु विश्वस्य मोदनाद्द्रावणात्तथा। मुद्राख्या सा
यदा संविदम्बिका त्रिकलामयीति योगिनीहृदये।
सत्सङ्गेन भवेन्मुक्तिरसत्सङ्गेषु बन्धनम्। असत्सङ्गमुद्रणं
यत्तन्मुद्रा परिकीर्त्तितेति तान्त्रिकगुरौ श्रीनिगमानन्दः।
जीवस्य भावनया शक्तेः प्रीणनं तर्पणम्।
गुणक्रियानुसारेण रूपं देव्याः प्रकीर्तितमिति
महानिर्वाणतन्त्रे। तद्रूपध्यानं तर्पणम्। भौतिकप्रकल्पे
गौदुग्धेन ब्राह्मणस्य। गौघृतेन क्षत्रियाणाम्। मधुना

वैश्यानाम्। शेषाणामनुपवीतानां शूद्रम्लेच्छादीनां मद्येन
तर्पणम्। अत्र मद्यशब्देन गुणत्रयानुसारेणार्थत्रयः।
गौडीपैष्टीमाध्वीति तामसी। नारिकेलजलादिभी राजसी।
गौदुग्धादिभिः सात्त्विकी। निर्गुणत्वे यौगिकी। यदुक्तं
परमं ब्रह्म निर्विकारं निरञ्जनम्। तस्मिन्प्रमदनज्ञानं तन्मद्यं
परिकीर्त्तिमिति तान्त्रिकगुरुः। कलाः सप्तदशप्रोक्ता अमृतं
श्राव्यते शशी। प्रथमा सा विजानीयादितरे मद्यपायिन
इति रुद्रयामलोत्तरतन्त्रे। सोमधारा क्षरेद्या तु
ब्रह्मरन्ध्राद्वरानने। पीत्वानन्दमयस्तां यः स एव
मद्यसाधक इति शाक्तागमेषु शिवोक्तिः।
सर्वे जीवाः मुमुक्षवो भवन्ति।
वेदविष्णुशिवदक्षिणसिद्धान्तवामकौलादिसप्ताचारेण
पशुवीरदिव्यभावेन यथाभिलषितपरम्परागतमार्गेण शक्तिं
ध्यात्वा क्रमेण आराधनं कुर्यात्। वैदिकं वैष्णवं शैवं
दक्षिणं पाशवं स्मृतम्। सिद्धान्तवामे वीरे तु दिव्यं
सत्कौलमुच्यत इति विश्वसारतन्त्रे।
एकेन व्योम्ना द्वाभ्यां व्योमवायुभ्यां
त्रिभिर्व्योमवायुतेजोभिश्चतुर्भिराकाशवायुतेजोजलैर्मुक्ता

धराचारिणो प्रकृत्या सहैकीकृता भवन्त्यात्मकल्याणकृत उत्तमगतयो भवन्ति। दक्षिणमार्गेण वामेन वा प्रकृतिपुरुषौ जना यजन्ति न तत्प्रारब्धभोगनिमित्तं कर्म यस्मादस्मिन् कर्मण्यघमर्षणभूतशुद्धिपूर्वकं हीनतात्यागो भवति। वाममार्गस्तु प्रेयो दक्षिणः श्रेयस्तस्माद्दक्षिणो गम्यो वामोऽगम्यः। योगमार्गेण पञ्चमकारैरात्मानं शोधयेत्। दक्षिणस्वरो वायुः साधनार्थ उचितम्। दक्षत इति दक्षिणः। साधनामार्गे दक्षिणे वा दक्षता दक्षिणा। मनसो दक्षता दक्षिणा। मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः। बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतमिति ब्रह्मबिन्दूपनिषदि शाट्यायनीयोपनिषदि च। दक्षिणा नाम दक्षतेरुत्साहकर्मणः। निश्चीयतेऽनेनेति निश्चयस्तस्मान्निश्चयो दक्षिणा उत्साहिकेति यया सर्वं प्राप्नोति। भज इत्येष वै धातुः सेवायां परिकीर्त्तितः। तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिः साधनभूयसीति गरुडपुराणे। देवानां गुणलिङ्गानामानुश्रविककर्मणाम्। सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या॥ अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसीति कापिलेयसंहितायाम्।

या गौरवं भयं प्रेम सद्भावं पूर्वनायके। न
मुञ्चत्यन्यसक्तापि सा ज्ञेया दक्षिणा बुधैरिति कोषे
तस्मादत्र भक्तिर्दक्षिणा यया भयं शोकञ्च जीवस्तरति।
दीयते ज्ञानमत्यन्तं क्षीयते पापसञ्चयः। तस्माद्दीक्षेति सा
प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिरिति योगिनीतन्त्रे। ददाति
दिव्यतां तावत् क्षिणुयात्पापसन्ततिः । तेन दीक्षेति
विख्याता मुनिभिस्तन्त्रपारगैरिति गौतमीयतन्त्रे।
तस्माद्दीक्षया दक्षिणया पापेभ्यो मुच्यते। गुरोश्चरणध्यानं
दक्षिणा ययाष्टसिद्धिर्भवति। बाह्यप्रकल्पे द्रव्ययज्ञादिषु
दक्षिणान्तर्यागेषु जपानुचिन्तनेष्वपि। शक्तेस्तर्पणं
प्रीडनञ्च दक्षिणा यया तृप्तिं लभते।
यज्ञानाञ्जपयज्ञोऽस्मीति श्रीमद्भगवद्गीतायाम्। जपस्तु
त्रिविधः प्रोक्तो वाचिकोपांशुमानस इति नारदपुराणे
नारसिंहे च। तद्दक्षिणा यया नश्यति बन्धः।
पूर्वजन्मार्जिताः संस्काराः शक्तेः स्मरणं कारयन्ति।
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यत इति
श्रीमद्भगवद्गीतायाम्। जन्मनामनुसन्धानेन
द्रव्यकामजातिस्मरादिशक्तिभिर्मुच्यते जन्ममृतिसंसृतेस्तदा

प्रारब्धनाशो भवति। एवमेव कर्मप्रारब्धभोगस्वरूपी
प्रकृतेर्विलासः। अहंस्वरूपिणी तद्भावग्राहिणी प्रकृतिः।
मनसाजां प्रकृतिमनुध्यायन्नात्मनि
तयैकाकारधारणयाद्वैतदृष्ट्या जीवो निर्विशेषो
निरुपाधिर्मुक्तः शुद्धः पूर्णो भूत्वा प्रत्यगात्मा भवति।
दूरस्थोऽपि न दूरस्थः पिण्डवर्जितः पिण्डस्थोऽपि
प्रत्यगात्मा सर्वव्यापी भवतीति पैङ्गलोपनिषदि।
प्रत्यगात्मा परञ्ज्योतिरिति पाशुपतब्रह्मोपनिषदि।

हेमलता भाषानुवाद

प्रकृति दो प्रकार की होती है। विद्या एवं अविद्या। बृहद्धर्म पुराण के अनुसार अविद्या भी दो प्रकार की होती है, माया एवं परमा। वही जीव के बन्धन एवं मोक्ष की हेतु होती है। जो लोकों को धारण करे अथवा जिसे पुण्यात्माओं के द्वारा धारण किया जाये, वह धर्म कहलाता है। इसके विपरीत व्यवहार को अधर्म कहते हैं। धर्म के पालन से जीव का मोक्ष होता है एवं धर्म के विपरीत जाने से उसका बन्धन होता है। सकाम कर्मों में धर्म प्रवृत्तिमार्गीय होता है तथा निष्काम कर्मों में वह निवृत्तिमार्गीय होता है। ईशावास्योपनिषत् में कहते हैं कि अविद्या की उपासना करने वाले अन्धकारमय लोकों को प्राप्त करते हैं।

अधर्म ही इस अन्धकार का प्रेरक है। प्रकृति की स्वाभाविकी लीला को कैवल्य कहते हैं। उस तत् ने देखा और इच्छा की कि मैं बहुत रूपों में हो जाऊं, ऐसा छान्दोग्य श्रुति कहती है। बहुत से रूपों में जीव ब्रह्म के सेवक होते हैं। तीनों गुणों को प्रश्रय देता हुआ ब्रह्म जीवत्व की उपाधि का भोग करता है, ब्रह्मत्व के उपायन से जीवत्व से निवृत्ति होती है। चौंसठ कलाओं से एवं भैरव, यामल, बहुरूप, मत, मङ्गल, चक्र, वागीश एवं शिखा - संज्ञक चौंसठ आगमों से यह बात समर्थित है।

जो अपना गान करने वाले की रक्षा करती है, उसे गायत्री कहते हैं, ऐसा स्मृतियों में कहते हैं। तत् का गायन एवं उसके प्रति गमन करने से वह गायत्री देवताओं के द्वारा भी पूजिता होती है, ऐसा देवीपुराण के देवीनिरुक्ताध्याय में वर्णित है। उस गायत्री के माध्यम से मोक्ष की प्रतिज्ञा ग्रहण की जाती है। सम्पूर्ण संसार को प्रसूत करने से ब्रह्म को सविता कहते हैं। उस देवता की देवशक्ति सावित्री कहलाती है। वेदों का प्रसव करने से वह विद्वानों के द्वारा सावित्री कहलाती है, ऐसा वह्नि उपपुराण में वर्णित है। उसके अथवा उसके द्वारा मनन से मोक्ष होता है। गाये जाने वाले स्वरों की संख्या सात बतायी गयी है। उन्हें सार्थक करके साधक के प्रति दान करने से देवी को सरस्वती कहते हैं, ऐसा देवीपुराण में वचन है।

उस शक्ति का चरित्र ही साधक का स्तोत्र है। लक्षण कहलाने वाले भावों को प्रेरित करती है, संसार को लय के लिए प्रेरित करती है। लय का अर्थ 'निर्माण' है, लय का अर्थ 'निवास' है, लय का अर्थ 'प्रलय' है। सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय की घटनाओं के परिवर्तन की कारिका होने से लक्ष्मी है। सभी स्थावर एवं जङ्गम जीवों की साक्षिणी है, शुभाशुभ का दर्शन करती या कराती है तथा संसार का पालन करने वाले विष्णु की सदैव रहने वाली वैभवशक्ति हैं, इसीलिए लक्ष्मी है। सभी सैद्धान्तिक ज्ञानों की लक्ष्य है, इसीलिए लक्ष्मी है। मिति का अर्थ 'शब्द' है, मिति का अर्थ 'मान' है, 'शब्द' एवं 'परिमाण' की लक्षणभूता होकर तीनों गुणों से युक्त कामनाओं के भाव का प्रक्षेपण अथवा उत्प्रेरण करती है, इसीलिए लक्ष्मी है।

व्यक्त एवं अव्यक्त सत्त्वभावों में स्थित होकर उनकी प्रेरिका होती है, स्वयं से ही स्वयं को प्रेरित करती और करवाती है, सज्जनों के पाप एवं कष्ट को क्षीण करती है, पृथ्वी के रूप से अपराध को क्षमा करती है, अथवा दण्ड देती है और सम्मानित होती है, संसार का भेदन करती है, वह लक्ष्मी है ऐसा श्रीसूक्त के शङ्करभाष्य में जातवेदाधिकार की दिव्यवृत्ति में सिद्धयोगिनी पद्मिनी ने निग्रहाचार्य के प्रति कहा। उस लक्ष्मी के माध्यम से पूजा होती है।

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु

तिथिभेद, पर्वभेद, कल्पभेद तथा अन्यभेदों में जो ख्यापिता है वह पार्वती है। विशेष (विजयादशमी आदि) महोत्सवों में पड़ती हुई जो भली प्रकार से स्तुता होती है, उन पर्वों की जो अधिष्ठात्री देवी हैं, उन्हें पार्वती कहते हैं। पर्वतराज हिमालय की पुत्री बनकर जो पर्वत में अवतरित हुईं, उन पर्वत की स्वामिनी देवी को पार्वती कहते हैं, ऐसा ब्रह्मवैवर्त पुराण के प्रकृतिखण्ड में है। उस शक्ति के माध्यम से ही परमार्थ मोक्ष की सिद्धि होती है।

मायाबीज (ह्रीं) को लक्ष्मीतन्त्र में "तारिका" (उद्धार करने वाली) कहा गया है। इसमें जो हकार है, वह आकाशदेहधारी तत् है। रकार अग्निरूप होकर प्रकृति है। शाक्तानंद तरंगिणी में ब्रह्मानन्द कौलाचार्य कहते हैं कि ईकार महामाया है। मन्त्ररहस्य में इस बीज की नादशक्ति को विश्वप्रसू (संसार को उत्पन्न करने वाला) बताया गया है। देवीभागवत में कहते हैं कि अर्धमात्रा (अनुस्वार) महेश्वरी है। बिना उच्चारण के ही (प्रणवाक्षर में) आधी मात्रा के रूप में तुम नित्य स्थित रहती हो, ऐसा मार्कण्डेयपुराण में है। श्रीमद्भगवद्गीता कहती है कि लोक में दो पुरुष हैं - क्षर एवं अक्षर। क्षरपुरुष का अक्षरपुरुष से योग मुद्रा कहलाता है। मुद्रा से रहित हाथ के द्वारा जो भी दिव्यकर्म किया जाता है वह निष्फल हो जाता है, अतः मुद्रा से युक्त हाथ का आचरण करे, ऐसा तृचभास्कर का वचन है।

कुलार्णवतन्त्र का वचन है - देवताओं को प्रसन्न करती है एवं उनके (मन को भक्त के प्रति) द्रवित करती है, इसीलिए हे कुलेश्वरी ! इसे मुद्रा कहते हैं एवं इसका प्रदर्शन करना चाहिये। जब तीन कलाओं से युक्त अम्बिका संवित् (ज्ञान) रूपिणी होकर विश्व की क्रियाशक्ति बनती है तथा उसका मोदन एवं द्रावण करती है तो उसे मुद्रा कहते हैं, ऐसा योगिनीहृदय का वचन है। तान्त्रिकगुरु में श्रीनिगमानन्द कहते हैं कि सत् की संगति से मुक्ति एवं असत् की संगति से बन्धन होता है, जिससे असत् का मुद्रण हो जाये, वह मुद्रा बतायी गयी है। जीव की भावना से शक्ति को प्रसन्न करने की प्रक्रिया तर्पण कहलाती है।

महानिर्वाण तन्त्र में कहते हैं कि देवी का रूप अलग अलग गुण एवं क्रियाओं के अनुसार बताया गया है। उनके रूपों का ध्यान ही तर्पण है। भौतिक क्रिया की दृष्टि से गाय के दूध से ब्राह्मणों का, गाय के घी से क्षत्रियों का तथा मधु के माध्यम से वैश्यों का तर्पण होता है। यज्ञोपवीत से हीन शूद्र एवं म्लेच्छ आदि के लिए मद्य से तर्पणविधान बताया गया है। यहाँ मद्यशब्द से तीनों गुणों के अनुसार तीन अर्थ बताये गये हैं। गौडी, पैष्टी एवं माध्वी आदि सुरा तामसी कही गयी हैं। नारियल के जल आदि से बनी राजसी होती है। गाय से दूध आदि से सात्त्विकी होती हैं। निर्गुणत्व की स्थिति में योगजन्या सुरा होती है।

तान्त्रिकगुरु में कहते हैं कि जो विकारहीन निरञ्जन परब्रह्म बताया गया है, उसमें रमण करने का ज्ञान ही मद्य कहलाता है। रुद्रयामल के उत्तरतन्त्र में कहते हैं कि (यौगिक को मिलाकर) चन्द्रमा की सत्रह कलाएं हैं। उनसे चन्द्रमा अमृत का निःस्राव करते हैं। उस योगजन्य अमृत का पान ही वस्तुतः मद्यपान है, अन्यथा लौकिक मदिरासेवन करने वाले तो बहुत से अन्यजन पड़े हुए हैं। शाक्तागमों में भगवान् शिव का वचन है कि हे सुन्दर मुख वाली देवी ! ब्रह्मरन्ध्र से जो चन्द्रमा की अमृतमयी धारा क्षरित होती है, उसे पीकर जो आनन्द में मग्न हो जाता है, वही वास्तव में मद्यसाधक है।

सभी जीव मोक्ष की कामना रखने वाले होते हैं। वेद, विष्णु, शिव, दक्षिण, सिद्धान्त, वाम एवं कौल आदि सात आचारों से एवं पशु, वीर एवं दिव्य भाव के माध्यम से, जैसा भी अभीष्ट हो, वैसे ही परम्परागत मार्ग से शक्ति का ध्यान करके यथाक्रम आराधना करे। विश्वसार तन्त्र में कहते हैं कि वैदिक, वैष्णव, शैव और दक्षिणाचार पशुभाव से सम्बन्धित हैं। सिद्धान्ताचार एवं वामाचार वीरभाव से तथा वास्तविक सद्धर्मी कौल दिव्यभाव से सम्बन्धित हैं। एक अर्थात् आकाश से, दो अर्थात् आकाश एवं वायु से, तीन अर्थात् आकाश, वायु एवं अग्नि से एवं चार अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि एवं जल से मुक्त होकर पञ्चम तत्त्व पृथ्वी में रहने वाले जीव क्रमशः मुक्त होकर प्रकृति के साथ

एकाकार होते हैं, अपना कल्याण करने वाले होते हैं, उत्तम गति वाले होते हैं। दक्षिणमार्ग अथवा वाममार्ग से लोग प्रकृति एवं पुरुष की उपासना करते हैं किन्तु वह उपासनारूपी कर्म प्रारब्धभोग का निमित्त नहीं बनता है क्योंकि इस कर्म में पाप का नाश एवं भूतों की शुद्धि करके हीनता का त्याग होता है। वाममार्ग जीव को प्रिय होता है एवं दक्षिणमार्ग उसके लिये कल्याणकारी है क्योंकि दक्षिणमार्ग सुगम है एवं वाममार्ग दुर्गम है। योगमार्ग से पञ्चमकारों के द्वारा अपनी शुद्धि करे। श्वास का दक्षिणस्वर जब चले तो उसे साधना कार्य में उचित जाने।

किसी कार्य में दक्षता को दक्षिणा कहते हैं। दक्षिणमार्ग अथवा साधनामार्ग में दक्षता दक्षिणा कहलाती है। मन की दक्षता दक्षिणा है। ब्रह्मबिन्दूपनिषत् एवं शाट्यायनीयोपनिषत् में कहते हैं कि मन ही मनुष्यों के बन्धन एवं मोक्ष का कारण है। बन्धन हेतु उसका विषयों में आसक्त होना आवश्यक है तो विषयहीन होना मोक्ष में निमित्त है। दक्षता के उत्साहकर्म को दक्षिणा कहते हैं। भली प्रकार से निर्णय लेने को निश्चय कहते हैं, इसीलिए उत्साह को जन्म देने वाली दक्षिणा निश्चय है जिसके द्वारा सब कुछ प्राप्त होता है। गरुडपुराण का वचन है कि भज धातु सेवा के अर्थ में बताया गया है, अतएव विद्वानों के द्वारा साधनामार्ग में जो सेवा बतायी गयी है, वह भक्ति है।

कापिलेयसंहिता में कहते हैं कि शुभ एवं महान् चर्चित कर्म को करने वाले देवताओं के गुण, लक्षण एवं नामों में सत्त्वयुक्त मन की जो सहज वृत्ति बनती है, जो बिना निमित्त के ही भगवान् से सम्पर्क स्थापित कर लेती है, वह भक्ति सिद्धि से भी बडी है। जो दूसरे में आसक्त होने के बाद भी पूर्वनायक के प्रति गौरव, प्रेम, भय, सद्भाव आदि का परित्याग नहीं करती है, बुद्धिमानों के द्वारा उसे (नायिकालक्षण में) दक्षिणा कहा गया है, ऐसा कोषग्रन्थ में है अतः यहाँ भक्ति को दक्षिणा कहा गया जिसके द्वारा जीव भय एवं शोक को पार कर जाता है। योगिनीतन्त्र में कहते हैं कि तत्त्वदर्शी मुनियों के द्वारा उसे दीक्षा इसीलिए कहा जाता है क्योंकि वह आन्तरिक ज्ञान को देते है एवं पापसमूहों को क्षीण करती है।

पाप को नष्ट करके दिव्यता प्रदान करने से तन्त्रवेत्ता मुनियों के द्वारा उसे दीक्षा कहा जाता है, ऐसा गौतमीयतन्त्र का कथन है। इस दीक्षारूपिणी दक्षिणा के माध्यम से व्यक्ति पापों से मुक्त हो जाता है। गुरु के चरणों का ध्यान दक्षिणा है जिससे आठों सिद्धियां होती हैं। बाहरी प्रकल्प जैसे द्रव्ययज्ञ इत्यादि में तथा अन्तर्यज्ञ जैसे जपानुचिन्तन आदि में भी यह दक्षिणा स्थित रहती है। शक्ति को प्रसन्न करना, उसका तर्पण करना भी दक्षिणा है, जिससे तृप्ति की प्राप्ति होती है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि मैं यज्ञों में जपयज्ञ हूँ। यह जप वाचिक, उपांशु एवं

मानसिक, इन तीन प्रकारों का बताया गया है, ऐसा नारदपुराण एवं नरसिंहपुराण में वर्णित है। वह जप दक्षिणा है जिससे बन्धन का नाश होता है। पूर्वजन्म के अर्जित संस्कार शक्तितत्त्व का स्मरण करवाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि बहुत जन्मों के अन्त में ज्ञानवान् व्यक्ति मुझे प्राप्त करता है। जन्मों के अनुसन्धान से, द्रव्यशक्ति, कामशक्ति एवं जातिस्मरत्व आदि की शक्ति से जब जीव जन्म एवं मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है, तब उसके प्रारब्ध का नाश होता है। ऐसा ही कर्मप्रारब्ध का भोग करने वाला प्रकृति का विलास है।

अहंस्वरूपिणी होकर तत् के भाव को ग्रहण करने वाली प्रकृति है। मन से उस अजन्मा प्रकृति का बारम्बार ध्यान करते हुए आत्मा में उसके साथ एकाकार होने से धारणा से, अद्वैतदृष्टि से, जीव निर्विशेष होकर, उपाधिहीन होकर मुक्त, शुद्ध पूर्ण एवं प्रत्यगात्मा होता है। पैङ्गलोपनिषत् में कहते हैं कि ब्रह्म से दूर रहता हुआ भी वह दूर नहीं होता। शरीर में रहता हुआ भी प्रत्यगात्मा चेतन शरीर से निर्लिप्त रहता है और सर्वव्यापी हो जाता है। पाशुपतब्रह्मोपनिषत् में प्रत्यगात्मा को परम ज्योतिःस्वरूप बताया गया है।

|| इति श्रीनिग्रहाचार्यकृते सृष्टिभाष्ये तृतीयोऽध्यायः ||

॥अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

तस्यायं दीक्षाक्रमः ॥०१॥ यश्च दीक्षापरः ॥०२॥
मनूपदेष्टारं गुरुमीशं मनुते ॥०३॥ गुरुरेव
सर्वदेवात्मा ॥०४॥ गुरुशासनं वेदशासनम् ॥
०५॥ गुरुचरणतीर्थं गङ्गा ॥०६॥
गुरुपादजपांसुर्भस्म ॥०७॥गुरुपूजा सर्वदेवपूजा ॥
०८॥ गुरुस्मरणं सर्वदेवस्मरणम् ॥०९॥
गुरुरात्मवतां शास्ता ॥१०॥ गुरुदर्शनं सर्वदेवदर्शनम्
॥११॥ तारकम् ॥१२॥ संसारोत्तारकम् ॥१३॥
गुरुतोषणं सर्वदेवतोषणम् ॥१४॥ मुद्रा
पुनरुत्पत्तिमुद्रा ॥१५॥ लक्ष्यं स्वात्मनि ॥१६॥ शिरो
गुरुपादे ॥१७॥ श्रोत्रं गुरुवाक्ये ॥१८॥
चक्षुर्गुरुसाक्षात्कारे ॥१९॥ वाक्पञ्चदश्याम् ॥२०॥
चित्तं बीजे ॥२१॥ करस्तर्पणे ॥२२॥ कायः
श्रीपादुकार्चने ॥२३॥ यद्भावनोपनिषदि ॥२४॥
शरीरं श्रीचक्रम् ॥२५॥ शम्भुरात्मा ॥२६॥ मनः

प्रकृतिः ॥२७॥ बुद्धिर्विद्या ॥२८॥ इच्छा लक्ष्मीः ॥२९॥ जाठरोग्निर्विष्णुः ॥३०॥ वैदिकं कर्म ॥ ३१॥ यावज्जीवमुपासनम् ॥३२॥ सद्भिः सङ्गः ॥ ३३॥ स्त्रीसामान्ये मातृभावः ॥३४॥ जायां विना सर्वदा शान्तिः ॥३५॥ अलङ्कारस्तोषाय ॥३६॥ धौतञ्च सितं चैलम् ॥३७॥ सुगन्धताम्बूलानि नित्यं सेव्यानि ॥३८॥ भ्रुवोर्मध्ये श्रीपादुकार्चनप्रसादः ॥ ३९॥सम्मोदं वा ॥४०॥ मन्वभिमन्त्रितानि सेव्यानि ॥४१॥ सर्वं जगत् प्रकृतिमयम् ॥४२॥ एष ब्रह्मविकारः ॥४३॥ सर्वं खल्विदं ब्रह्म ॥४४॥ नैव नानास्ति किञ्चन ॥४५॥ अहमिति भावयेत् ॥४६॥ अष्टाङ्गयोगैरिष्टार्थसिद्धिः ॥४७॥ संसार्यप्यसंसारी ॥ ४८॥ कुर्वन् कर्माणि न लिप्यते ॥४९॥ चित्तैकाग्र्यं सर्वत्र साधनम् ॥५०॥ सर्वार्थसिद्धयो हि तेन ॥ ५१॥ एषा हि शाक्ता दीक्षा ॥५२॥ नित्यकर्माविरोधेन ॥५३॥ नाभक्ष्याणि भक्षयेत् ॥ ५४॥ न नीचैः सह वसेत् ॥५५॥ न निषिद्धं

निषेवेत ॥५६॥ यद्गायत्री माता ॥५७॥ सर्वत्र वेदः प्रमाणम् ॥५८॥ धर्मो हि वर्णाश्रमोचितः ॥५९॥ दीक्षाभङ्गे पापियान् भवति ॥६०॥ पतत्येव चिरं निरये ॥६१॥ विधिवद्दीक्षित उभयत्र नित्यं सुखमश्नुते ॥६२॥ एष दक्षिणः पन्थाः ॥६३॥ ब्राह्मणादीनां त्रयाणां तारतम्योचितः ॥६४॥ शूद्रपाषण्डप्रभृतीनां वामः पन्थाः ॥६५॥ तत्र महिमा गरियान् कलौ प्रकृतिप्रसादतः ॥६६॥ पुरुषं विन्देत् ॥६७॥ नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥६८॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

श्रीनिग्रहाचार्यकृतं सृष्टिभाष्यम्

तस्य प्रत्यगात्मनो दीक्षाक्रम उच्यते। क्रियावर्णवेधकलामयी दीक्षा। अपरक्रमे मन्त्रमयी। मन्त्रोपदेष्टा गुरुरीश्वरस्य चिन्तनं करोति। सर्वदेवमयो गुरुस्तस्य वाक्यं वेदवन्निश्चलम्। यस्य पादोदकं गङ्गा तस्मै श्रीगुरवे नम इति धुरन्धरसंहितायाम्। तस्य

पादरजो भस्म। गुरोरर्चनेन स्मरणेन सर्वदेवार्चनं स्मरणञ्च। स त्वात्मज्ञानिनां शास्त्रसिद्धशासकः। तस्य दर्शनेन सर्वदेवदर्शनफलं भवति। स तु संसारस्यात्मनश्च तारकः। दृष्टान्तो नैव दृष्टस्त्रिभुवनजठरे सद्गुरोर्ज्ञानदातुरिति शङ्कराचार्यः। तस्य तुष्ट्याखिलदेवानां तोषणं भवति। यथा स्वाङ्गानि कूर्मो निमीलयते मोचयति च तथा पुनरुत्पत्तिमुद्रा। आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च। इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांश्चेषुगोचरानित्यग्निपुराणे यमगीतायाम्। आत्मा लक्ष्यम्। अथ व्यवहारनिर्देशनम्। गुरुपादे शिरः। तस्य वाक्ये कर्णौ यस्मान्मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यम्। नेत्रे तस्य दर्शने। वाणी पञ्चदश्याम्। वाणी चतुर्धा भवति। परापश्यन्तीमध्यमावैखरीति। अत्र परा परा। शेषाणां पञ्चदशप्रभेदाः। वाक्यशब्दवर्णस्वरध्वनिरिति वैखरी। आन्तरस्मृतिशब्दोच्चारमन उच्चारसंयोजनमिति मध्यमा। भक्तिबन्धनादध्वनिशब्दनिरीक्षणमिति पश्यन्ती। एवं पञ्चदश्या मन्त्रजपः। व्यग्रचित्तो हतो जप इति पद्मपुराणे

तस्माच्चित्तं बीजे सन्निधापयेत्। करौ तर्पणे गुरुप्रीडने वा। देहस्तस्य पादुकाद्युपस्करार्चने। यथा भावनया वेदान्तदृष्टिरनन्यचित्तत्वेन च सिद्धिरिति भावोपनिषदि। शरीरं श्रीचक्रेष्टालयमत्र शिव आत्मा मनः प्रकृतिर्बुद्धिर्विद्या यथात्मा त्वं गिरिजा मतिरिति शङ्कराचार्यः। देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः शिव इति स्कन्दोपनिषदि। इच्छा लक्ष्मीस्तस्याः पूरयिता जाठररूपको विष्णुः। वेदविहितं कर्तव्यं न तु वेदविरुद्धमेवञ्जीवनपर्यन्तम्। सतां सङ्गेन मुक्तिः। मातृवत्परदारेष्विति गरुडपुराणे। जायां विना शान्तिरत्रानासक्तभावनिर्देशः। देहतोषाय भस्ममाल्यादिभिरलङ्करणम्। सितं धौतं वासो धारयेत्। अमादकसुगन्धयुक्तताम्बूलसेवनं गृहस्थसाधकैर्न तु यतिभिः। भ्रुवोर्मध्ये श्रीपादुकार्चनं कुर्यादादरेण। विना मन्त्रसिद्धं न सेवयेत्। सर्वं जगत् प्रकृतिमयं ब्रह्मविकारः। विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवानिति भविष्यपुराणे श्रीमद्भगवद्गीतायाञ्च। सर्वमिति जडचेतनमयं चराचरञ्जगत्।

खल्विदमित्यशेषतया लोके लोकोत्तरे वा। अहं ब्रह्मस्वरूपिणीति देव्यथर्वशीर्षे। सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनमिति श्रीमद्देवीभागवते। सत्तामसत्तां परिभावयन् सर्वगोचरागोचरत्वधर्मिणां तत्त्वे ब्रह्मतत्त्वं प्रतिष्ठितमित्यर्थः। न नानात्वे। अहमिति पदेन परमेश्वरोऽर्थीभूतः। अकारस्तु शिवो विष्णुः पुरुषो वा। हकारेण तस्य शक्तिरुमा श्रीः प्रकृतिर्वा निगद्यते। संयोगात्तयोरानन्दो जायते। आनन्देन ब्रह्मानन्द इति। ब्रह्मपदेन सर्वरूपता लक्षितेति भावयेत्। यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहाधारणाध्यानसमाधि - रित्यष्टाङ्गयोगस्तेनार्थसिद्धिर्भवति संसारे निवसन्नपि न लिप्यते कर्माणि कुर्वन्नपि। योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धय इति योगवाशिष्ठे शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यत इति श्रीमद्भगवद्गीतायाम्। तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रिय इति तत्रैव। तस्मात्सर्वार्थसिद्धिरेषा शक्तिदीक्षा न नित्यकर्मावरोधिका। अभक्ष्याणि न भक्षयेद्यस्मादभक्ष्यस्य निवृत्त्या तु विशुद्धं हृदयं भवेत्।

आहारशुद्धौ चित्तस्य विशुद्धिर्भवति स्वत इति पाशुपतब्रह्मोपनिषदि। नीचसङ्गतिं न कुर्यात्। बुद्धिश्च हीयते पुंसां नीचैः सह समागमादिति महाभारते। शास्त्रेषु गुरुणा प्रतिबन्धितं नाचरेद्यथा गायत्री विधिनिषेधज्ञानिनी। वेदान् स्वतः परमं प्रमाणञ्च जानीयाद्यत्तेषु वर्णितस्तं वर्णाश्रमोपयुक्तं धर्ममाचरेत्। नियमत्रुटौ पतितः प्रायश्चित्ती भवति। प्रायश्चित्ताभावेऽधः पतति नरकेषु। दीक्षितो नियमपालनादिह लोकोत्तरे च सुखं भुनक्ति। एवं दक्षिणमार्गतो यत्र द्विजातीनां स्थितिः। शूद्रादिवेदबाह्येभ्यो वाममार्गतः सिद्धिरेवं भवति। पाशब्देन त्रयीधर्मः पालनाज्जगतः स्मृतः। तं खण्डयन्ति यस्मात्ते पाखण्डास्तेन हेतुनेति माहेश्वरतन्त्रे। कलौ वेदाचारलोपेन प्रकृते इच्छया वामप्रशस्तिस्तेन मार्गेण पुरुषमक्षरं ब्रह्म लभेन्नास्त्यन्योपायो मोक्षस्येत्यर्थः।

हेमलता भाषानुवाद

उस प्रत्यगात्मा का दीक्षाक्रम कहा जाता है। क्रियामयी, वर्णमयी, वेधमयी एवं कलामयी, ये चार प्रकार की दीक्षाएं होती

हैं। अपरक्रम में सामान्यतः मन्त्रमयी होती है जिसमें मन्त्र के उपदेष्टा गुरु ईश्वर का चिन्तन करते हैं। गुरु सभी देवताओं के स्वरूप हैं, उनकी वाणी वेद के समान निश्चल होती है। धुरन्धरसंहिता में कहते हैं कि जिनके चरणोदक की गंगा के समान महत्ता है, ऐसे गुरु के लिए प्रणाम है। उनके चरण की धूल भस्म के समान शिरोधार्य है। गुरु के पूजन एवं स्मरण से सभी देवताओं के पूजन एवं स्मरण का फल प्राप्त होता है। आत्मज्ञानियों का वह शास्त्रसिद्ध शासक है। उसके दर्शनमात्र से सभी देवताओं के दर्शन का पुण्यफल प्राप्त होता है। वह संसार एवं अपना, दोनों का उद्धार करने वाला होता है।

शंकराचार्य जी कहते हैं कि ज्ञान देने वाले गुरु के समान उपमा तीनों लोकों में नहीं मिलती है। उस गुरु के सन्तुष्ट होने पर सभी देवताओं को सन्तुष्टि हो जाती है। जैसे कछुआ अपने अंगों को सिकोड़ता एवं फैलाता है, वैसा ही करने पर पुनरुत्पत्ति मुद्रा बनती है (जिसका आश्रय साधक को लेना चाहिये)। अग्निपुराण की यमगीता में कहते हैं कि आत्मा को रथी एवं शरीर को रथ जानो। बुद्धि को सारथी एवं मन को लगाम समझो। इन्द्रियों को घोड़ा एवं विषयों को बाण कहा गया है। यहाँ आत्मा ही लक्ष्य है। अब शिष्य के व्यवहार का निर्देश करते हैं। गुरु के चरणों में मस्तक रहे। उनकी वाणी सुनने में दोनों कान तत्पर रहें क्योंकि

गुरु की वाणी ही मन्त्र का आधार है। नेत्र उनके दर्शन में रत रहें। वाणी पन्द्रह प्रकारों में लगी रहे। वाणी के चार प्रकार होते हैं - परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी। इसमें परा तो इस लोक से परा ही है। शेष के पुनः पन्द्रह प्रभेद होते है। वाक्य, शब्द, वर्ण, स्वर एवं ध्वनि, ये पांच वैखरी के प्रकार हैं।

आन्तरिकस्थिति की स्मृति, शब्द, (नाद का) उच्चारण, मन का उच्चारण एवं उनका संयोजन, ये पांच प्रकार मध्यमा के होते हैं। भक्ति, बन्ध, नाद, ध्वनि एवं शब्द में से प्रत्येक का आन्तरिक निरीक्षणरूपी कार्य, ये पांच भेद पश्यन्ती के होते हैं। इस प्रकार से पन्द्रह प्रकारों से पञ्चदशी के मन्त्र का जप होता है। पद्मपुराण में कहते हैं कि व्यग्रचित्त से किये गये जप का नाश हो जाता है अतएव चित्त को बीज में स्थापित करे। दोनों हाथ तर्पण या गुरु को सन्तुष्ट करने में लगे रहें। शरीर उनकी खड़ाऊं आदि साधनों की देखभाल करे।

जैसा कि भावना से वेदान्तदृष्टि होती है, भावोपनिषत् में कहते हैं कि अनन्यचित्त से साधनामार्ग का अवलम्बन करने पर ही सिद्धि होती है। शरीर ही श्रीचक्ररूपी इष्ट का घर (मन्दिर) है। शिव आत्मा हैं, मन प्रकृति है एवं बुद्धि विद्या है। जैसा कि शंकराचार्य जी कहते हैं कि हे शिवजी ! आप आत्मा हैं एवं देवी

पार्वती मति हैं। स्कन्दोपनिषत् में कहते हैं कि शरीर ही देवता का निवास बताया गया है जिसमें जीव ही शिव है। इच्छा लक्ष्मी हैं जिसको पूर्ण करने वाले जठराग्निरूपी विष्णु हैं। जैसा वेदों में बताया गया है, वैसा ही जीवनपर्यन्त करना चाहिये, वेदविरुद्ध नहीं। सज्जनों की संगति से मुक्ति होती है।

गरुडपुराण में कहते हैं कि दूसरों की स्त्रियों में माता का भाव रखकर व्यवहार करना चाहिये। पत्नी के बिना ही शान्ति है, इस उक्ति में पत्नी के मोहक प्रारूप के प्रति अनासक्तभाव के अनुपालन का निर्देश है। शरीर की शोभामात्र हेतु भस्म, माला आदि अलंकार धारण करे। धुले हुए शुभ्र वस्त्रों को धारण करे। नशामुक्त सुगन्धित ताम्बूल का सेवन गृहस्थ साधकों के लिये बताया गया है किन्तु संन्यासियों के लिये नहीं। दोनों भौंह के मध्य में भगवती की पादुका का आदरपूर्वक ध्यान में पूजन करे।

मन्त्र से अभिमन्त्रित किये बिना कुछ भी सेवन न करे। यह सम्पूर्ण संसार ब्रह्म का विकार बनकर प्रकृतिमय है। भविष्यपुराण एवं श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं कि विकारों एवं त्रिगुणों को प्रकृति से उत्पन्न जानो। 'सर्व' का तात्पर्य जड़चेतन से युक्त यह चराचर जगत् है। 'खल्विदं' का अर्थ निःशेष संसार

एवं संसार से परे तत्त्वों से सम्बन्धित है। देव्यथर्वशीर्ष में देवी कहती हैं - मैं ब्रह्मस्वरूपिणी हूँ। श्रीमद्देवीभागवत में कहते हैं - जो कुछ भी संसार में है, सब कुछ मैं ही हूँ, मेरे अतिरिक्त कोई अन्य शाश्वत सनातन नहीं है। सत्ता एवं असत्ता की भावना करते हुए सभी इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य एवं अग्राह्य गुण वालोंणां के तत्त्व में ब्रह्मतत्त्व प्रतिष्ठित है, ऐसा अर्थ है। यह नानात्व में नहीं होता है। 'अहम्', इस पद से परमेश्वर का अर्थ ग्रहण किया गया है। अकार शिव, विष्णु अथवा पुरुष है। हकार से उसकी शक्ति उमा, लक्ष्मी अथवा प्रकृति कही जाती है। उन दोनों के संयोग से आनन्द उत्पन्न होता है। आनन्द शब्द से ब्रह्मानन्द की भावना करे।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि, इस प्रकार आठ अंगों वाला योग होता है, जिससे अभीष्टसिद्धि होती है। संसार में योगी रहता हुआ भी, कर्म करता हुआ भी उससे लिप्त नहीं होता है। योगवाशिष्ठ में कहते हैं कि अपनी शुद्धि के लिये योगीजन आसक्ति का परित्याग करके कर्म करते हैं। हे अर्जुन ! शरीर में रहता हुआ भी योगी वस्तुतः न कुछ करता है और न लिप्त होता है, ऐसा श्रीमद्भगवद्गीता का वचन है। उसी ग्रन्थ में कहते हैं कि साधनामार्ग में प्रवृत्त होने से पूर्व मन को एकाग्र करके अपने

चित्त, इन्द्रिय एवं क्रियाओं को नियन्त्रित करे। इस प्रकार से व्यवहार करने पर ही सभी कामनाओं की सिद्धि होती है। ऐसी ही शाक्त दीक्षा है, जो नित्यकर्म में बिना अवरोध उत्पन्न किये ही सम्पादित होती है।

अभक्ष्य वस्तुओं का भक्षण न करे क्योंकि पाशुपतब्रह्मोपनिषत् में कहते हैं कि अभक्ष्य की निवृत्ति से हृदय विशुद्ध हो जाता है एवं आहार की शुद्धि से चित्त की भी विशुद्धि स्वतः हो जाती है। नीचकर्मा जनों की संगति न करे क्योंकि नीच जनों की संगति से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, ऐसा महाभारत का कथन है। जिसका प्रतिबन्ध शास्त्रों में मिलता हो अथवा गुरु के द्वारा किया गया हो, उस आचरण को न करे क्योंकि गायत्री विधि तथा निषेध को जानने वाली है।

वेदों को स्वतः एवं परम प्रमाण जाने। उनमें वर्णाश्रमसम्मत जो बताया गया है, उस धर्म का आचरण करे। नियम टूटने पर व्यक्ति पतित हो जाता है, उसे प्रायश्चित्त करना होता है। प्रायश्चित्त के अभाव में वह नीचे नरकों में गिर जाता है। जो दीक्षित साधक है, वह नियमों का पालन करके इस लोक तथा परलोक में सुख का उपभोग करता है। इस प्रकार से यह दक्षिणमार्ग से साधना होती है जिसमें द्विजातियों (ब्राह्मण,

क्षत्रिय एवं वैश्य) की स्थिति होती है। शूद्र आदि वेदबाह्य जनों के लिये वाममार्ग से इसी प्रकार सिद्धि होती है। माहेश्वरतन्त्र में कहते हैं कि "पा" शब्द से तीनों वेदों (में बताये गये धर्म) का सन्दर्भ होता है। जो उस "पा" को खण्डित करे, वह पाखण्ड है। कलियुग में वेदाचार के लुप्तप्राय होने के कारण प्रकृति की इच्छा से वाममार्ग की श्रेष्ठता बतायी गयी है। उस मार्ग से अक्षर पुरुष, ब्रह्म को प्राप्त करे। मोक्ष का कोई अन्य उपाय नहीं है, यह अर्थ है।

|| इति श्रीनिग्रहाचार्यकृते सृष्टिभाष्ये चतुर्थोऽध्यायः ||

तपसा तुष्टा स्वप्न एकदा महाकालिका निग्रहं कौलरहस्यं वामाचारिणमबोधयत्। तत्रैव स्वप्ने योनिचक्रार्चनं कृत्वा श्रीविश्वयोनिस्तोत्रं रचयामास प्रार्थनां कृत्वा सप्ताहेऽगस्त्यप्रोक्तशक्तिसूत्रेषु पञ्चोत्तरत्रिशतसङ्ख्यकेषु सृष्टिभाष्यं लिलेख।

तपस्या से सन्तुष्ट होकर स्वप्न में एकबार निग्रहाचार्य को महाकालिका ने कौलधर्म के वामाचारी रहस्य का बोध कराया। वहीं पर स्वप्न में उन्होंने योनिचक्रार्चन करके श्रीविश्वयोनिस्तोत्र की रचना की एवं प्रार्थना करके एक

सप्ताह में अगस्त्य के द्वारा कहे गये ३०५ शक्तिसूत्रों पर सृष्टिभाष्य को लिखा।

निग्रह उवाच

एकैककोणे निवसन्ति वेदा
मध्ये मुखे तिष्ठति ब्रह्मवेदः।
तन्त्राणि यस्याः खलु रोमव्यूहे
तां विश्वयोनिं प्रणमामि नित्यम् ॥०१॥
धृत्वा कपालं विकटापसव्ये
चान्ये तु खट्वाङ्गमतीवतीक्ष्णम्।
ननर्त साकं बटुकैः कबन्धै -
स्तां मुण्डमालां प्रणमामि नित्यम् ॥०२॥
प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनाङ्गीं
सितद्विजाञ्चासितमेघवर्णाम्।
त्रिलोचनां लङ्घितसप्तवर्षां
त्वां मुक्तकेशां प्रणमामि नित्यम् ॥०३॥
कृतैकभक्तार्तिविखण्डिताशां
कृतैकभक्तानुमनोभिलाषाम्।
मत्स्यध्वजारीन्द्रियक्षुब्धहासां

त्वां कृष्णतेजां प्रणमामि नित्यम् ॥०४॥
वीर्येण यस्या निहतः शतास्यः
सुभक्षितो लोहितसम्भवश्च।
विमुण्डितौ दुर्जयचण्डमुण्डौ
तां खड्गहस्तां प्रणमामि नित्यम् ॥०५॥

निग्रहाचार्य ने कहा - जिसके एक एक कोण में तीनों वेद निवास करते हैं, मध्य-मुखभाग में ब्रह्मवेद (अथर्ववेद) है, जिसकी रोमावलियों में तन्त्रशास्त्र निहित हैं, ऐसी उस विश्वयोनि को मैं सदैव प्रणाम करता हूँ। अपने दाहिने हाथ में विकराल कपाल को धारण की हुई, दूसरे हाथ में अत्यन्त तीक्ष्ण खड्वाङ्ग को धारण की हुई, छोटे बच्चों के शीर्षविहीन कबन्धों के साथ जिसने नृत्य किया, ऐसी मुण्डमाला वाली देवी को मैं सदैव प्रणाम करता हूँ। जिनके मुख में प्रसन्नता है, जिनके नेत्र रक्तवर्ण के हैं, श्वेत वर्ण के दांत एवं मेघ के समान काला शरीर, तीन नेत्रों से युक्त, आठ वर्ष की अवस्था वाली, तुझ खुले बालों वाली देवी को मैं सदैव प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने अपने भक्तों के कष्टों को खण्डित कर दिया है, जिन्होंने अपने भक्तों के मनोभिलाषा को पूर्ण कर दिया है, मछली के चिह्न को धारण करने वाले

कामदेव के शत्रु भगवान् शिव की इन्द्रियों को भी जिन्होंने अपनी मुस्कुराहट से क्षुब्ध कर दिया है, ऐसी काले रंग की (अथवा कल्पान्तर में श्रीकृष्ण रूप से अवतरित होने वाली) देवी को मैं सदैव प्रणाम करता हूँ। जिनके पराक्रम से (अद्भुतादि रामायणों में वर्णित) शतानन रावण मारा गया था, रक्त से उत्पन्न होने वाले रक्तबीज का जिन्होंने भक्षण कर लिया, जिन्हें जीत पाना अत्यन्त कठिन था, ऐसे चण्ड एवं मुण्ड के मस्तकों को जिन्होंने काट डाला, ऐसी हाथों में खड्ग धारण की हुई देवी को मैं सदैव प्रणाम करता हूँ।

यां पूजयित्वा विबुधादयस्ते
भुञ्जन्ति लोकानि हिरण्मयानि।
क्रोधेन लोकानि विशन्ति काले
त्वां गुह्यरूपां प्रणमामि नित्यम् ॥०६॥
त्वया समस्तं त्रिगुणात्मरूपं
सृष्टं जगद्दशरूपं सजीवम्।
पुष्टं त्वया संहृतमन्तकाले
त्वां वस्त्रकाष्ठां प्रणमामि नित्यम् ॥०७॥

जिसकी पूजा करके सभी देवतागण अपने अपने दिव्य

स्वर्णमय लोकों का उपभोग करते हैं, जिनके क्रोध से प्रलयकाल में सभी लोक विनष्ट हो जाते हैं, ऐसे गुप्त स्वरूप वाली देवी को मैं सदैव प्रणाम करता हूँ। तुम्हारे ही द्वारा तीनों गुणों से युक्त यह दशविध सृष्टि से युक्त संसार बनाया जाता है, तुम्हारे द्वारा ही इसमें चेतनात्मा को प्रवेश कराया जाता है एवं तुम्हारे द्वारा ही अन्त में इसे समाप्त भी कर दिया जाता है। ऐसी, दिशाओं को ही वस्त्र के रूप में धारण करने वाली (दिगम्बरा) देवी को मैं सदैव प्रणाम करता हूँ।

जाने न तत्त्वं तव ब्रह्मविद्ये
नैवादिमध्यं न पुनर्भवञ्च।
भीतोऽस्मि पश्यामि मुहुर्मुहुस्त्वां
त्वां मोक्षसंस्थां प्रणमामि नित्यम्॥०८॥

हे ब्रह्मविद्ये ! मैं तुम्हारे तत्त्व को नहीं जानता हूँ। तुम्हारी उत्पत्ति, मध्य अथवा पुनर्भव को भी नहीं जानता हूँ। तुम्हारे स्वरूप को देखकर भयभीत भी होता हूँ एवं बारम्बार तुम्हारी ओर देखता भी हूँ, मोक्षपद में स्थित (अथवा मोक्ष देने वाली) तुझे मैं सदैव प्रणाम करता हूँ।

--*

॥ इत्यगस्त्यर्षिकृतेषु शक्तिसूत्रेषु श्रीनिग्रहाचार्यकृतं सृष्टिभाष्यं सम्पूर्णम् ॥

॥ इस प्रकार अगस्त्य ऋषि के द्वारा लिखे गये शक्तिसूत्रों पर श्रीनिग्रहाचार्य के द्वारा विरचित सृष्टिभाष्य सम्पूर्ण हुआ ॥

--*